समरथ

मई – जून 2005 **नई दिल्ली**

नाहि तो जनम नसाई

एशिया जाग उठा – 1951 में प्रकाशित हुई। यह दौर दुनिया के कोने–कोने में गुलामी से मुक्ति हासिल करने का दौर है। यह दौर सुनहरे सपनों का दौर है। यह दौर सुनहरे सपनों के साकार होने के सपनों का दौर है। आरजूओं, उम्मीदों, हसरतों, तमन्नाओं को हासिल होते देखने का दौर है। सचमुच एशिया जाग उठा था। अपनी हकीकत और ताकत का भी उसे अंदाज़ा हो रहा था। लेकिन 'कहाँ कातिल बदलते हैं, फ़क़त चेहरे बदलते हैं' ऐसा ही हुआ, आज जबकि साम्राज्यवादी–आर्थिक भूमण्डलीकरण ने चारों ओर तबाही मचा रखी है, एक नया दौर शुरू होने को है। साम्राज्यवादी गुलामी से मुक्ति हासिल करने का दौर। सुनहरे सपनों का दौर। सुनहरे सपनों के साकार होने के सपनों का दौर। आरजूओं, उम्मीदों, हसरतों, तमन्नाओं को हासिल होते देखने का दौर। इस दौरान जरूरी है कि एक बार हम फिर एशिया की हकीकत पर नज़र डालें। शर्त सिर्फ इतनी कि यह दौर एशिया के आम इंसानों का ही होकर रहे, कातिलों के नए चेहरों का नहीं।

एशिया जाग उठा

अली सरदार जाफ़री

यह एशिया की ज़मीं, तमद्दुन[1] की कोख, तहज़ीब का वतन है
यहीं पे सूरज ने आँख खोली
यहीं पे इन्सानियत की पहली सहर ने रूख़[2] से नक़ाब उलटी
यहीं से अगले युगों की शम्ओं ने इल्म–ओ–हिकमत का नूर पाया
इसी बलन्दी से वेद ने ज़मज़मे सुनाये
यहीं से गौतम ने आदमी की समानता का सबक़ पढ़ाया
हमारी तारीख़ की हवाएँ मसीह के बोल सुन चुकी हैं
हमारा सूरज मुहम्मदे–मुस्तफ़ा के सर पर चमक चुका है
और जब हमारे क़दीम आकाश के सितारे
क़दीम आँखों से एशिया की नयी जवानी को देखते हैं

यह ख़ाक वह ख़ाक है कि जिसने
सुनहरे गेहूँ के मोतियों को जनम दिया है
यह ख़ाक इतनी क़दीम[3] जितनी क़दीम इन्साँ की दास्तानें
अज़ीम[4] इतनी अज़ीम जितनी हिमालया की बलन्दियाँ हैं
हसीन इतनी हसीन जितनी हसीं अजन्ता की अप्सराएँ
यह अपनी फ़ैयाज़ियों[5] में दरयाए–नील–ओ–गंगा से कम नहीं है
यह गोद बच्चों से और फूलों से और फलों से भरी हुई है।

हमारा विरसा मोहनजोदाड़ो से लेके दीवारे–चीन तक है
हमारी तारीख़ ताज और सीकरी से अहरामे–मिस्त्र तक है
हमें रिवायात के ख़ज़ानों से बाविलो–नीनवा मिले हैं
फ़साहतों[6] ने हमारे बचपन के होंट चूमे
बलाग़तों[7] ने बड़ी हसीं लोरियाँ सुनायीं
ज़बान खोली तो वेद, इंजील और क़ुरआन बन के बोले
हमारी तख़ईल[8] आसमानों की उस बलन्दी को छू चुकी है

जहाँ से फ़िरदौसी और सा'दी
निज़ामी, ख़ैयाम और हाफ़िज़ के चाँद सूरज चमक रहे हैं

बलन्दियाँ जिन पे वाल्मीक और पाक तुलसी
कबीर और सूर हुक्मराँ[9] हैं
उन्हीं फ़ज़ाओं[10] की बिजलियाँ हैं
जो साज़े–इक़बाल और टैगोर के तरानों में गूँजती हैं

2

गुज़र चुके हैं हमारे सर से
हज़ारों सालों के तुन्द[11] तूफ़ाँ
मुसीबतों की हवाएँ, जुल्मो–सितम की आँधी
मगर यह अनमोल ख़ाक फिर भी हसीन फिर भी जवाँ रही है
हमारे रुस्तम हमारे अर्जुन मरे नहीं हैं
वह जंगलों और पहाड़ियों में ज़मीन पर काश्त कर रहे हैं
हमारे फ़रहाद अब भी तीशे[12] चला रहे हैं
जवान लैला, हसीन शीरीं, कुँवारी हीर अब भी गा रही है
शकुनतलाएँ घनेरे पेड़ों के सब्ज़ सायों में नाचती हैं
हम एशिया के अवाम सूरज की तरह डूबे हैं और उभरे
दुखों की अग्नि में तप के निखरे
हमारी आँखों के आगे कितनी सियाह सदियों की साँस टूटी
न जाने कितने बलन्द परचम
हमारी नज़रों के सामने सरनिगूँ[13] हुए हैं
उलटते देखे हैं तख़्त हमने
उजड़ते देखे हैं ताज हमने
हमारे सीने से जाने कितने रथों के पहिये गुज़र चुके हैं
मगर हम इस भूक, क़त्ल, इफ़लास[14] के अँधेरे
हवादिसे–रोज़गार[15] के तुन्दो–तेज़[16] शोलों में अनगिनत जन्म ले चुके हैं
हम अपनी धरती की कोख में बीज की तरह दफ़्न हो गये थे
मगर नयी सुबह की हवा में
बहार की कोंपलों में तब्दील होके बाहर निकल पड़े

यह एशिया की ज़मी, तमद्दुन की कोख, तहज़ीब का वतन है
जबीं पे तारों का ताज, पैरों में झाग झाँझनों का नग़मा
ज़मीन–सदियों पुराना चेहरा
किसान–सदियों पुराने हाथों में अपने लकड़ी के हल सँभाले
ग़रीब मज़दूर, जलती आँखें
उचाट नींदों की तल्ख़[17] गर्म फ़ौलाद की रवानी
जहाज़, मल्लाह, गीत, तूफ़ाँ
कुम्हार, लोहार, चाक, बरतन
ग्वालनें दूघ में नहायी
अलावों के गिर्द बूढ़े अफ़साना–गो, कहानी
जवान माँओं की गोद में नन्हे–नन्हे बच्चों के भोले चेहरे
लहकते मैदान गायें, भैंसें
फ़ज़ाओं में बाँसुरी का लहरा
हरी–भरी खेतियों में शीशे की चूड़ियाँ खनखना रही हैं
उदास सहरा पयम्बरों की तरह से ख़ामोश और गम्भीर
खजूर के पेड़ बाल खोले
दफ़ों की आवाज़ ढोलकों की गमक
समन्दर के क़हक़हे नारियल के पेड़ों की सर्द आहें

सितार के तार से बरसते हुए सितारे
अनार के फूल, आम का बौर, सेबो–बादाम के शिगूफ़े
कोठार, खलियान, खाद के ढेर, कुँवारी पगडण्डियों की गर्दिश
बलन्द बाँसों के झुण्ड हँसती धनक के नीचे
घनेरे जंगल
पठार, मैदान, रेगज़ारों[18] के गर्म सीने
गुफाएँ जन्नत की तरह ठण्डी
समन्दरों में कँवल के फूलों की तरह रखे हुए जज़ीरे
चमकते मूँगों की मुस्कराहट
वो सीपियों की हँसी, व सन्थाल लड़कियों के चमकते
दाँतों की तरह मोती
वो मछलियाँ गोश्त से भरी कश्तियाँ जो पिघली
सफ़ेद चाँदनी में तैरती हैं

वो लम्बी–लम्बी हसीन नदियाँ
जो अपनी मौजों से साहिलों के लरज़ते होटों को चूमती हैं
दुल्हन बनी वादियों की नाज़ुक कमर में झरनों के नर्म हल्के
पहाड़ियों की हथेलियों पर धरे हुए नीलगूँ[19] कटोरे
सितारे मुँह देखते हैं झीलों के आईने में
हिमालया के गले में गंगा की और जमुना की शोख़ बाँहें
पहाड़ की आँधियों के माथों पे बर्फ़ के नीलगूँ दुपट्टे
बलन्दियों पर ख़फ़ीफ़[20]–सा इर्तिआश[21] हलकी–सी रागिनी का

यह एशिया है, जवान, शादाब और धनवान एशिया है
कि जिसके निर्धन ग़रीब बच्चों को भूक के नाग डस रहे हैं
वो होंट जो माँ के दूध के बाद फिर न वाक़िफ़ हुए
कभी दूध के मज़े से
ज़बानें ऐसी जिन्होंने चक्खा नहीं है, गेहूँ की रोटियों को
वह पीठ जिसने सफ़ेद कपड़ा छुआ नहीं है
वो उँगलियाँ जो किताब से मस नहीं हुई हैं
वो पैर जो बूट और स्लीपर की शक्ल पहचानते नहीं हैं
वो सर जो तकियों की नर्म लज़्ज़त से बेख़बर हैं
वो पेट जो भूक ही को भोजन समझ रहे हैं
ये नादिरे–रोज़गार[22] इन्साँ
तुम्हें फ़क़त एशिया की जन्नत ही में मिलेंगे
जो तीन सौ साल के 'तमुद्दन' के बाद भी 'जानवर' रहे हैं
कहाँ हो 'तहज़ीब और तमुद्दन' की रौशनी लेके आनेवालो

तुम्हारी 'तहजीब' की नुमाइश है एशिया में
कहीं ज़माने में इस क़दर दर्दनाक चेहरे नहीं मिलेंगे
तुम्हारी शहाना यादगारों से एशिया का
हर–एक कोना भरा हुआ है
कहीं पे मेहराबे–फ़त्ह[23] बाँधी
कहीं रुऊ़नत[24] की लाट उठायी
कहीं पे काँसे के घोड़े ढाले
कहीं पे पत्थर के बुत बनाये
मगर यह 'तहज़ीब और तमद्दुन' की यादगारें कहीं नहीं है
बुलाओ अपने मुसव्विरों[25] और बुतगरों को
कहो कि इन दर्दनाक चेहरों से एक–एक म्यूज़ियम सजा दे
तुम्हारे कारे–अज़ीम को जाविदाँ[26] बना दें
अब एशिया की ज़मीं पे हाथों का एक जंगल उगा हुआ है
यह संगे–मरमर की, संगे–असूवद की मुट्ठियाँ हैं
कँवल की कलियाँ, कपास के फूल, बम के और नारियल के गोले
कहाँ हैं ऐ नौ–अरूसे–सुब्हे–बहार[27] आजा
हमारी बेताब मुट्ठियों में
शफ़क़[28] का सिन्दूर
चाँद तारों के फूल
किरनों की सुर्ख़ अफ़शाँ भरी हुई है।

1951

---

1. सभ्यता, **2.** चेहरा, **3.** प्राचीन, **4.** महान, **5.** दानशीलता, **6.** औचित्य, **7.** प्रसंगानुकूल बात, **8.** कल्पनाशक्ति, **9.** हुकूमत करना, **10.** वातावरण, **11.** प्रचण्ड, **12.** कुदाल, **13.** सर झुकाए हुए, **14.** कंगाली, **15.** रोज़गार की समस्याएँ, **16.** तेज लपकते और भड़कते हुए, **17.** कड़वी, नागावार, **18.** मरुस्थल, **19. नीला,** **20.** थोड़ा, **21.** कम्पन, **22.** दुनिया भर में सबसे श्रेष्ठ, **23.** जीत का झंडा, **24.** स्वच्छंदता, **25.** चित्रकारों, **26.** हमेशा रहने वाला, शाश्वत, **27.** वसंत की सुबह रूपी नयी दुल्हन, **28.** उगते हुए सूरज की लालिमा।

भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया (विधानसभा चुनाव – 2005)

डा. योगेश भटनागर

बिहार, हरियाणा और झारखंड के चुनावों के नतीजे चाहे कैसे भी रहे हैं पर इन चुनावों ने कुछ सवालों के साथ एक सवाल जो अहम खड़ा किया है वो ये है कि क्या भारतीय लोकतंत्र के विभिन्न स्तम्भों ने अपने संवैधानिक अधिकारों के तहत काम किया ? बिहार और झारखंड के चुनावों के नतीजों ने यू.पी.ए. को एक परेशानी में डाल दिया है और साथ ही कांग्रेस अध्यक्ष और यूपीए की चेयरपर्सन सोनिया गांधी के लिए एक अहम सवाल खड़ा कर दिया है: धर्मनिरपेक्ष गठबंधन को कैसे महफूज़ रखा जा सकता है? बिहार में राष्ट्रपति शासन लागू हो गया है क्योंकि कांग्रेस पार्टी, राजद और लोजपा को एक मंच पर नहीं ला पायी। झारखंड में जिस तरह भाजपा–एनडीए ने विश्वास मत प्राप्त किया है वो अपने आप में भाजपा की विधायकों को खरीद–फरोख्त करने की ताकत दिखाता है। भाजपा ने विश्वास मत हासिल करने से पहले ही पांच निर्दलीय विधायकों को यह ऐलान करके खरीद लिया था कि उन्हें मंत्री बना दिया जायेगा जैसा कि बाद में किया भी गया। हालांकि झारखंड में भाजपा में पार्टी के अंदर गुटबाज़ी थी, सरकार के पास सफलताएँ या विकास के नाम पर दिखाने के लिये कुछ भी नहीं था और सत्ता पक्ष के विरुद्ध रोष भी काफी था। इसके बाद भी यूपीए गठबंधन बहुमत हासिल नहीं कर पाया। लोकसभा चुनावों में राजद और कॉंग्रेस–झामुमो–राजद–वामपंथ गठबंधन, का प्रदर्शन बहुत ही अच्छा था। पर कांग्रेस ने राजद और वाम पार्टियों को अपने गरूर के तले गठबंधन से बाहर रख सिर्फ झामुमो के साथ गठबंधन किया। ये जानते हुए कि शिबू सोरेन का आदिवासी इलाकों में असर कम हुआ है और मुख्यमंत्री बनने की इच्छा ने सोरेन और स्टीफन मरांडी में मतभेद पैदा कर दिये हैं। नतीजा कांग्रेस कुल 10 सीटें जीत पायी।

झारखंड में विश्वास मत के दौरान साफ हो गया कि एन.डी.ए.के पास 40 विधायक थे और यूपीए के पास कुल 37। यूपीए के पास भी 40 विधायक थे पर इसे उनकी लापरवाही कही जाये या अपरोक्ष रूप से भाजपा का समर्थन कहा जाये – यूपीए के एक विधायक ने एटेन्डंस रजिस्टर पर दस्तखत नहीं किये। दूसरे विधायक एनसीपी के कमलेश सिंह दोबारा हस्पताल में भर्ती हो गये (ये अब भाजपा में चले गये हैं) और तीसरी जोबा मंझी कार खराब हो जाने की वजह से सदन में देर से पहुँची। देखा जाये तो ये तीनों विधायक और झारखंड पार्टी के चौथे विधायक इनोस इक्का को स्पीकर ने अयोग्य (डिसक्वालीफाई) करार दे देना चाहिये था पर ऐसा नहीं करके खुद स्पीकर का व्यवहार भी संदेहास्पद और पक्षपाती नज़र आया।

दि हिंदू (दैनिक) और **सेंटर फॉर दी स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसायटीज़** के झारखंड में किये गये एक चुनावोत्तर सर्वेक्षण के निष्कर्ष इस तरह हैं: किसी भी गठबंधन को 30 प्रतिशत तक वोट नहीं मिले। भाजपा–जद (यू) को कुल 27.4 प्रतिशत वोट मिले जबकि कांग्रेस–झामुमो को 26 और 26.3 प्रतिशत वोट मिले। आखिर आठ महीने में ऐसा क्या बदला है कि कांग्रेस–झामुमो गठबंधन हार गया, भाजपा विरोधी शक्तियों में इस आठ महीने के दौरान फूट पड़ती गयी और वो अलग–अलग होती गयीं। कांग्रेस–झामुमो ने राजद और सीपीआई को साथ नहीं रखा ये सोचकर कि उनकी ज़रूरत नहीं है। अगर कांग्रेस–झामुमो और राजद का गठबंधन होता तो वोट शेयर के मुताबिक ये 44 सीटें जीत सकते थे। कांग्रेस–झामुमो गठबंधन में भी आपस में दोस्ताना कंटेस्ट हुए। दोनों पार्टियां अपने–अपने वोट एक दूसरे को ट्रांसफर नहीं कर पायीं।

लोकसभा चुनावों में कांग्रेस, झामुमो, राजद सीपीआई के गठबंधन ने 20 में 19 सीटें जीती थीं और 81 में से 62 विधानसभा क्षेत्रों में लीड में थी। अगर गठबंधन बरकरार रहता तो नतीजे अलग होते।

गठबंधन की कमज़ोरी के साथ–साथ वोट शेयरों में गिरावट भी आयी है। झारखंड में बड़ी पार्टियों से कुल

वोटों का पांचवां हिस्सा छोटी पार्टियों और निर्दलीयों को गया है। छोटी ताकतों जैसे वामपंथी, झामुमो के साथ अन्य छोटी पार्टियों और निर्दलीयों को 35 प्रतिशत वोट मिले। इस तरह देखा जाये तो इनको वोटों के मुकाबले में सीटें कम मिलीं मतलब 12 सीटें। ये वोट प्रतिशत बड़ी पार्टियों में अविश्वास दिखाता है।

एक सवाल, क्या भाजपा को एक और मौका दिया जाना चाहिये, के जवाब में 47 प्रतिशत ने 'हाँ' कहा और 53 प्रतिशत ने 'ना' कहा। इस हाँ में उच्च जातीय, कुर्मी–महतो आते हैं जबकि 53 प्रतिशत में यादव, दलित, आदिवासी और मुस्लिम आते हैं। इस सवाल का जवाब साबित करता है कि अगर गठबंधन ठीक होता तो यह 53 प्रतिशत वोट यूपीए को मिलते।

बिहार में त्रिशंकु विधानसभा होने की वजह से राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। राजद की सीटों की संख्या 115 से 75 पर आ गयी। लालू ने जो 40 सीटें गँवायी वो एक पार्टी को नहीं सभी पार्टियों को गयीं। यूपीए की सभी पार्टियों की सीटें मिलाने के बाद भी बहुमत नहीं हो पाया। वैसे इस चुनाव को सिर्फ लालू की राजद की हार के रूप में ही नहीं देखना चाहिये न ही इसको जद (यू) के बढ़ते जनाधार के रूप में। कांग्रेस अध्यक्ष और राजद अध्यक्ष ने कई गलतियाँ कीं। लालू की यह समझ कि कांग्रेस का जनाधार बिहार में नहीं बढ़ा है ठीक साबित हुई। कांग्रेस को सिर्फ 5 प्रतिशत वोट और 10 सीटें मिलीं। बसपा तक को 4.41 प्रतिशत वोट मिले। ये बात गौर करने की है कि लोजपा के 30 विधायकों में से बहुत सारे आरोपित हैं। लोजपा ने जो 29 सीटें जीती हैं उनमें से 14 पहले राजद की थीं। लोजपा को 12.6 प्रतिशत वोट मिले। लालू और पासवान के झगड़े की वजह से पूर्वी बिहार में भाजपा ने 13 सीटें जीती, मध्य बिहार में इस झगड़े ने जद (यू) को 21 सीटें जितायीं। सीपीआई–एमएल (माओवादी) काफी ताकतवर पार्टी होकर उभरी। इसके अलावा राजद के सांसद को तड़ी पार करने के आदेश ने भी चुनावों पर असर डाला। इन चुनावों में जद (यू) ने 55 सीटें जीतीं और 14.55 प्रतिशत वोट पाये। कांग्रेस और भाजपा दोनों राष्ट्रीय पार्टियां बिहार में हाशिये पर आ गयीं हैं।

झारखंड में और बिहार विधानसभा के चुनावों ने जैसा कि हमने ऊपर कहा, भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लोकतंत्र के स्तम्भों की भूमिका और सत्ता संतुलन से जुड़े कुछ सवाल उठाये हैं जिनका विश्लेषण हम नीचे कर रहे हैं।

झारखंड में सुप्रीमकोर्ट की भूमिका

झारखंड मामले में जिस तरह सुप्रीम कोर्ट ने दखलअंदाज़ी की है वो लोकतांत्रिक प्रणाली के खिलाफ होने के साथ–साथ असंवैधानिक भी है। भारतीय संविधान कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के अधिकारों को साफ तौर पर परिभाषित करता है। संविधान के अनुच्छेद 361 में साफ लिखा है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल को उनके दायित्व संबंधी कदम के लिये उन पर कोई न्यायिक कार्यवाही नहीं हो सकती। ऐसी ही सुरक्षा संसद और संसद सदस्यों और विधानसभा और विधानसभा सदस्यों को भी प्राप्त है। अनुच्छेद 105 के अनुसार संसद के भीतर मतदान या किसी और काम के लिये संसद सदस्यों पर न्यायिक कार्यवाही नहीं हो सकती। इसी तरह अनुच्छेद 122 में साफ लिखा है कि संसद की किसी भी कार्यवाही की वैद्यता पर कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता। इसी अनुच्छेद के भाग दो में ऐसी कार्यवाही से जुड़े व्यक्तियों तक मुकदमा चलाये जाने की मनाई है। सबसे बढ़कर अनुच्छेद 212 है जिसमें विधायिका के काम में कोर्ट दखल नहीं दे सकते। इस तरह से देखा जाये तो सुप्रीम कोर्ट की न्यायिक सक्रियता असंवैधानिक थी। झारखंड में सुप्रीम कोर्ट ने साफ–साफ दखलअंदाज़ी की है। मतदान कराने का काम प्रोटेम स्पीकर का नहीं है। उसे केवल शपथ दिलाने का हक है जिसके बाद सदन का गठन होता है। सदन फिर अपना स्पीकर चुनता है और चुना हुआ स्पीकर मतदान कराता है। दूसरी बात सुप्रीम कोर्ट ने सिर्फ एक पक्ष को ध्यान में रखकर अपना फैसला दे दिया। सुप्रीम कोर्ट को ये आदेश देने का कोई हक नहीं है कि वह सदन की पूरी कार्यवाही की वीडियो रिकॉर्डिंग देखेगा। इसका मतलब सदन की अवमानना होगा जो एक अलोकतांत्रिक परम्परा की शुरुआत होगी। संविधान के नज़रिये से देखा जाये तो विधानसभा सुप्रीम कोर्ट के खिलाफ अपने विशेषाधिकार (प्रीविलेज) हनन का मुद्दा उठा सकती थी पर क्योंकि झारखंड में अब एनडीए की सरकार है इसलिये ये सवाल नहीं उठेगा। सिवा भाजपा के किसी और पार्टी ने सुप्रीम कोर्ट के इस असंवैधानिक फैसले का स्वागत नहीं किया। इसकी वजह साफ हैः भाजपा का चरित्र ही फासीवादी, अलोकतांत्रिक और तानाशाह का है।

अदालतों पर न्यायपालिका और विधायिका के अधिकारों के बीच की सीमा रेखा लांघने से चिंतित लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने सभी राज्यों के पीठासीन अधिकारियों की एक बैठक 20 मार्च को बुलायी। इस बैठक में 22

राज्यों के पीठासीन अधिकारियों ने भाग लिया। भाजपा–एनडीए शासित राज्यों के पीठासीन अधिकारियों ने भाजपा के आदेश पर इस बैठक का बहिष्कार किया। भाजपा–एनडीए शासित प्रदेश के पीठासीन अधिकारियों के बहिष्कार ने साबित कर दिया कि वे पार्टीगत राजनीति से ऊपर नहीं हैं। स्पीकर बनने के बाद भी वे अपने को पार्टी के सदस्य और विधायक मानते हैं। ये अपने आप में अलोकतांत्रिक और असंवैधानिक है।

इस बैठक में सोमनाथ चटर्जी ने कहा कि न्यायपालिका हमारे देश की संसदीय प्रणाली की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की आदत से बाज़ आये और लोकतंत्र के तीन अंग अपनी लक्ष्मण रेखा का पालन करें। चटर्जी ने सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश को न्यायपालिका और विधायिका के बीच सत्ता संतुलन बिगड़ने वाला बताया और इस तरह के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित किया। चटर्जी ने कहा कि झारखंड के मामले में सुप्रीम कोर्ट का आदेश विधायिका के कार्यक्षेत्र में दखल होने के साथ–साथ बेअसर भी था। सुप्रीम कोर्ट के आदेश का पालन नहीं हो सका और आखिर में प्रधानमंत्री और कार्यपालिका के दखल से ही झारखंड में सब ठीक हो सका। उन्होंने पीठासीन अधिकारियों को याद दिलाया कि हमारे संविधान में सत्ता के स्पष्ट विभाजन के साथ–साथ यह हिदायत दी गयी है कि न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका में से कोई भी एक दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण करने की कोशिश न करे।

चुनाव आयुक्त की भूमिका

चुनाव आयुक्त की भूमिका इन विधानसभा चुनावों में पक्षपाती और संदेहास्पद रही है। हर फैसला परोक्ष और अपरोक्ष रूप से भाजपा–राजद गठबंधन को फायदा पहुंचाने की नीयत से किया गया नज़र आता है। हरियाणा में मतगणना की तारीख को पीछे हटाकर झारखंड और बिहार के चुनावों को प्रभावित करने की कोशिश के रूप में माना जायेगा, हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयुक्त के इस फैसले को रद्द किया। इस फैसले ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया को रोकने की कोशिश की क्योंकि अगर मतगणना 27 तारीख से पहले हो जाती तो पोस्टल बैलेट मतगणना में शामिल न हो पाते। दूसरा फैसला जो लोकतांत्रिक प्रणाली के खिलाफ और नागरिकों के मूलभूत अधिकारों का हनन था वो था निर्वाचित लोकसभा सदस्यों को गुन्डों की तरह ज़िलों से तड़ीपार करना। राजद के सांसद साधुयादव, अखिलेश सिंह और रघुनाथ झा को उनके संसदीय क्षेत्रों से तड़ीपार किया गया, राजद के ही शहाबुद्दीन को एक तरफ न्यायालय ने तो ज़मानत दी पर चुनाव आयुक्त के आदेश पर जिला प्रशासन ने उन्हें बेऊर जेल में रखे रखा। इस तरह इन सबको अपराधी, हिस्टरी शीटर और गुंडे माना। संविधान के मुताबिक चुनाव आयोग को यह सुनिश्चित करने का दायित्व है कि मतदाता निर्भय होकर, स्वेच्छा से अपना वोट डाल सके पर इस अधिकार का इस्तेमाल करते हुए यह भी सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि संविधान के दूसरे प्रावधानों का उल्लंघन ना हो। सांसद जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। शपथ लेने के बाद उन्हें विशेष अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जिनमें स्वतंत्र विचरण और उनको अपने दायित्व निर्वहन में प्रशासन द्वारा सहयोग के अधिकार भी शामिल हैं। चुनाव आयुक्त ये अच्छी तरह से जानते हैं कि चुनाव आयोग दंडाधिकारी नहीं है। वो ये भी अच्छी तरह जानते हैं कि जनता द्वारा चुने जाने के बाद वो किसी सांसद का, उसकी पृष्ठभूमि अपराधी की होने के आधार पर, सांसद होने का प्रमाणपत्र नहीं रोक सकते। वो अच्छी तरह जानते हैं कि चुनाव आयोग अपराधियों को चुनाव लड़ने और उनके चुने जाने को नहीं रोक सकते। इस सब को जानते हुए चुनाव आयुक्त ने अलोकतांत्रिक फैसले लेकर अपने आपको भाजपा जैसी अलोकतांत्रिक और फासीवादी पार्टी के साथ खड़ा कर दिया। वैसे इस बात से ताज्जुब नहीं होना चाहिये क्योंकि भाजपा–राजद गठबंधन ने आरएसएस के स्वयंसेवक को उपराष्ट्रपति बनाया और आरएसएस से ही जुड़े ही लोगों की चुनाव आयुक्त समेत कई महत्वपूर्ण स्थानों और न्यायपालिका में नियुक्ति की।

राष्ट्रपति की भूमिका

सबसे ज़्यादा दुर्भाग्यपूर्ण बात तो यह है कि राष्ट्रपति भी भाजपा की विचारधारा से इत्तिफाक रखते नज़र आते हैं। झारखंड में भाजपा को सरकार न बनाने के न्यौते को लेकर भाजपा ने आंदोलन छेड़ा और भाजपा ने अपने विधायकों की राष्ट्रपति के सामने परेड की। हालांकि संविधान के मुताबिक राष्ट्रपति भी जानते हैं कि राज्यों में मुख्यमंत्री की नियुक्ति में उनकी कोई भूमिका नहीं होती और न ही वो प्रधानमंत्री और कैबिनेट की सलाह के बगैर राष्ट्रपति शासन लागू कर सकते। फिर भी राष्ट्रपति भाजपा विधायकों के प्रतिनिधिमंडल से मिले। भाजपा जानती है कि संसद राज्य में मुख्यमंत्री नही नियुक्त कर

शेष पृष्ठ 20 पर.....

हिंसा के ख़िलाफ़ उठी आवाज़ें

जुही

औरतों और बच्चियों पर होने वाली यौन हिंसा एक विश्वव्यापी सच्चाई है। यह उतना ही बड़ा सच है जितना औरतों पर पुरुषों का दबाव। यह औरतों के साथ रोज़मर्रा होने वाले उन हादसों में से एक है जिसे समाज अनदेखा करता रहा है।

आंकड़े बताते हैं कि औरतों के साथ हिंसा सदियों से पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही है। सोलह, सत्रह व अठारहवीं सदी में छः से बारह करोड़ औरतों को डायन करार देकर मार डाला गया था। यह यूरोप जैसे विकसित महाद्वीप में हुआ था। अफ्रीका में आज भी हर साल छः करोड़ लड़कियों/बच्चियों की 'टिटनी' काट दी जाती है। 'टिटनी' औरत की योनि का एक हिस्सा है जो औरत को यौन सुख देता है। जननांग के इस हिस्से का कोई और दूसरा काम नहीं है। 'टिटनी' को काटे जाने के पीछे औरत की यौनिकता को दबाकर उसे वश में रखने की पितृसत्तात्मक सोच प्रमुख है।

चीन में ख़ूबसूरती के नाम पर लड़की के पैदा होते ही उसके पैरों में लोहे के जूते पहनाए जाते हैं। यह रिवाज़ ख़ासकर उच्च वर्गों में पाया जाता है। नतीजन सम्पन्न घरानों की औरतें वास्तव में 'अपने पैरों पर' ठीक से खड़ी ही नहीं हो पाती। ठीक इसी तरह आज भी ख़ूबसूरती के नाम पर विकसित देशों में हज़ारों लड़कियां खुद को इकहरा, सुंदर बनाने की होड़ में सर्जरी, इंप्लांट, वजन कम करने की दवाइयां, टॉनिक आदि लेने से परहेज़ नहीं करतीं। यह भी एक तरह की हिंसा है। सुंदर दिखने की यह चाह उसी मानसिकता का नतीजा है जो औरत का महज़ वस्तु के रूप में देखती है। जिसके लिए औरत के दिलो दिमाग उसका हुनर, उसकी क़ाबलियत कोई मायने नहीं रखती।

इस तरह की हिंसा के अलावा शारीरिक छेड़छाड़, बलात्कार, यौन शोषण आदि लगभग सभी समुदायों में मौजूद है। घरेलू हिंसा, दहेज, मारपीट, अलग–अलग रूप में दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है।

हमारा मानना है कि हिंसा के लिए हमारे समाज में फैली पितृसत्तात्मक सोच जिम्मेदार है। पितृसत्तात्मक सोच जो पुरुषों को औरतों से श्रेष्ठ व बेहतर मानती है। दक्षिण एशिया की ही बात लें तो भारत, पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, हर जगह औरत का दर्जा पुरुषों से नीचे है। पितृसत्तात्मक सोच व इससे उपजी हिंसा का सबूत है।

कुछ लोगों का मानना है कि यह संघर्ष स्त्री व पुरुष के बीच का आपसी झगड़ा है। यह सोचना कतई सही नहीं है। दरअसल यह पितृसत्ता को सर्वोत्तम मानकर, उसकी सत्ता को बरकरार रखती है। वो दूसरी मूल्य व्यवस्था है जो स्त्री–पुरुषों को एक–दूसरे को पूरक मानते हुए समता व समानता के रिश्ते बनाने पर ज़ोर देती है।

क़रीब एक दशक पहले प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफ़ेसर अमर्त्य सेन ने हिसाब लगाया था कि केवल दक्षिण एशिया व चीन में सौ मिलियन औरतें 'लापता' हैं। इसमें से भारत में ही छत्तीस मिलियन औरतें 'लापता' हैं। यहां लापता के मायने हैं 'मृत'। विडम्बना यह है कि आज तक किसी राजनैतिक दल या पार्टी ने औरतों की घटती संख्या को ज़रूरी मुद्दा नहीं माना है। हमारे इस महान देश में एक ओर छत्तीस मिलियन औरतों को जीने ही नहीं दिया गया वहीं दूसरी ओर हम ढिंढोरा पीटते हैं कि भारत में औरतें लक्ष्मी व देवी मानी जाती हैं। इस तरह के नारे उछालने से पहले हम ज़रा भी नहीं सोचते। है न हैरानी की बात!

हमारे रीति–रिवाज़, व्रत, त्योहार, पर्व, दावतें हमें कभी भी भूलने नहीं देते कि पुरुष व लड़कों का दर्ज़ा औरतों से ऊंचा है। करवा चौथ, अहोई, तीज, वगैरह सभी समाज में स्त्री–पुरुष के इस असमान संतुलन को बनाए रखने में मदद करते हैं। हमारी भाषा भी इस भेदभाव को बढ़ाती है। उदाहरण के लिए अब 'पति' शब्द को ही ले लें। पति शब्द

का अर्थ है क़ाबू में रखने वाला या मास्टर जैसे भूमिपति। दूसरी ज़बानों में पति की जगह स्वामी, शौहर, ख़ाविंद, साहिब आदि शब्द इस्तेमाल किए जाते हैं। ग़ौर से देखें कि इन शब्दों में कहीं भी बराबरी, दोस्ती, सहभागिता का जज़्बा नहीं है। यह सिर्फ़ दबाव, नियंत्रण और ताक़त का एहसास कराता है।

पितृसत्तात्मक हिंसा के विश्वस्तरीय स्वरूप को देखते हुए यह बिल्कुल साफ़ है कि इससे जूझने और इसे चुनौती देने की ज़रूरत भी विश्व स्तर पर होनी चाहिए। साथ ही यह संघर्ष हर घर, हर गली, हर समुदाय, हर क्षेत्र, हर शहर, हर देश तक पहुंचना चाहिए। यानि इस संघर्ष का रूप एक जन अभियान या आवामी–आंदोलन का होना चाहिए। इसे ख़त्म करने की ज़िम्मेदारी हर पुरुष और हर औरत को उठानी होगी। इसे चुनौती देने की पहल और अगुवाई नारीवादी कार्यकर्त्ताओं ने कर दी है। पर इसे आम जनता तक ले जाने के लिए हम सबको एकजुट होना पड़ेगा।

पिछले दशकों से हिंसा के ख़िलाफ़ कई सक्रिय अभियान चलाए जा रहे हैं। यह अभियान औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा के चारों ओर फैली चुप्पी को तोड़ने के लिए जनमत जुटाने व औरतों को मान–सम्मान के साथ, भरपूर, सुरक्षित ज़िंदगी जीने की आज़ादी मुहैय्या कराने के लिए काम कर रहे हैं। कोशिश यही है कि किस प्रकार इन अभियानों को और ज़्यादा व्यवस्थित व मज़बूत बनाया जाए। पर चुनौती अभी भी वही है – किस तरह इन अभियानों के माध्यम से आम औरत को खेत, खलिहान, घर, सड़क, दुकान, नुक्कड़, परिवार के अंदर हर जगह एक महफूज़ माहौल मिले। पुरुषों को औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा की ज़िम्मेदारी लेने व उनके नज़रिये में बदलाव लाने की दिशा में कैसे काम किया जाए।

इस दिशा में शुरू एक अंतर्राष्ट्रीय अभियान जो हर साल दुनिया भर में चलाया जाता है, वह है – लड़कियों व औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा रोको अभियान। यह अभियान हर साल 25 नवंबर से लेकर 10 दिसंबर तक चलाया जाता है। 25 नवंबर औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा का अंतर्राष्ट्रीय दिवस है। 10 दिसंबर मानव अधिकार दिवस है। सोलह दिन के इस अभियान में गीत, संगीत, नाटक, मोर्चा, साइकिल रैली आदि माध्यमों का इस्तेमाल करके औरतों पर होने वाली हिंसा की बात की जाती है।

इस साल भारत में क़रीब 72 महिला समूहों व स्वयंसेवी संस्थानों ने इस अभियान में हिस्सा लिया। 25 नवंबर को भारी तादाद में दिल्ली शहर में इंडिया गेट की अमर जवान ज्योति के आगे बैनर, पोस्टर, नुक्कड़ नाटक, तख्तियां – जिन पर हिंसा विरोधी नारे लिखे थे – औरतें व पुरुष जमा हुए। सबने पिछले एक साल में हिंसा का शिकार हुई और इससे मरने वाली औरतों को श्रद्धांजलि दी। हमने ख़ासकर यह कार्यक्रम इंडिया गेट पर आयोजित किया था। अमर जवान ज्योति जंग में सीमा पर शहीद हुए सैनिकों का स्मारक है। यह सभी सैनिक अपनी भारत माता की 'आबरू' बचाने के लिए 'दुश्मन' के हाथों सीमा पर मर–मिटे थे। याद रहे कि हर रोज़, हर साल हज़ारों की संख्या में 'शहीद' होने वाली औरतों के लिए हमारे देश में कोई स्मारक नहीं बनाया जाता।

हम जानना चाहते हैं उन औरतों की शहादत का क्या जो पुरुषों को जन्म देती है, जो उनकी परवरिश करती हैं, घर–समुदाय बनाती हैं। क्या हमारा समाज कभी इन औरतों को याद करता है? क्या हम कभी घरेलू हिंसा, बलात्कार, दहेज, गर्भ–लिंग परीक्षण, जैसे कारणों से मारी जाने वाली औरतों के बारे में कभी सोचते हैं? क्या इन औरतों को हम शहीद का दर्जा देते हैं? नहीं, हम तो कभी उन्हें याद भी नहीं करते। समाज के लिए औरतों की मौत एक आम बात है। इस पर तवज्जो देने लायक कुछ भी नहीं है।

इस रवैये को देखते हुए आज पहले से भी ज़्यादा महसूस होता है कि अगर हम औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा को जड़ से मिटाना चाहते हैं तो हमें अपने विरोध की रफ़्तार तेज़ करनी होगी। इसके लिए होने वाले प्रयास केवल नारीवादियों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं व चंद औरतों की ज़िम्मेदारी नहीं होनी चाहिए। पुरुषों को इस हिंसा की ज़िम्मेदारी लेते हुए इसका खुलकर प्रतिवाद करना होगा। इसमें आम लोगों की शिरकत होनी चाहिए।

आम जनता तक पहुंचने के लिए हमें उन माध्यमों का सहारा लेना होगा जिन्हें वे समझें, महसूस करें, जो उन्हें सोचने–विचारने के लिए मजबूर करें। गीत, संगीत, नाटक, फ़िल्में आदि कुछ ऐसे सांस्कृतिक संसाधन हैं जो किसी भी जन अभियान में शामिल किए जा सकते हैं। ये तरीक़े लोगों के दिलो–दिमाग को छूते हैं। इसलिये पुरुषों के ज़ेहन और व्यवहार में मुख़्तलिफ बदलाव लाने में कारगर साबित हो सकते हैं।

'हम सबला' वर्ष 2005 अंक 2 से साभार

साझी विरासत

जनसंस्कृति मंच के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री अजय कुमार जी से एक साक्षात्कार

श्री अजय कुमार जी का जन्म 24 नवम्बर सन् 1940 में हुआ। आप कांग्रेस के संस्थापक व स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्व. बाबू रामेश्वर प्रसाद सिंह जी के पुत्र हैं। स्थानीय राज इण्टर कॉलेज में सन् 1961 से नागरिक शास्त्र विषय के प्रवक्ता, कवि, साहित्यकार एवं लेखक रहे हैं। प्रकाशित पुस्तकें **ईद मुबारक, हिंदू मुसलमान एक मामूली आदमी की डायरी में**, **पहली कविताएं**, **लाल कोठी का सन्नाटा और** ...। वर्तमान में हिन्दी भवन, जौनपुर (उ.प्र.) के अध्यक्ष व जनसंस्कृति मंच के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष हैं। 'लोकतंत्र बचाओ अभियान' उ.प्र., अवध के प्रभारी सलीम अहमद ने 'समरथ' पत्रिका के लिए 'साझी विरासत एवं साझी संस्कृति' विषय पर अजय जी से विस्तार से बात–चीत की इसी साक्षात्कार के प्रमुख अंश हम 'समरथ' के पाठकों के समक्ष रख रहे हैं। सलीम अहमद एक स्वतंत्र पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता है।

स. अ.: बातचीत के लिए आपका स्वागत है।

अ. कु.: धन्यवाद

स. अ.: साझी विरासत एवं साझी संस्कृति का क्या अर्थ है?

अ. कु.: हमारे देश में 4635 विभिन्न समुदाय हैं। इन्हीं समुदायों की मौलिक जीवन शैली से हमारी राष्ट्रीय आम जीवन की मुख्यधारा बनी। समय–समय पर विभिन्न नस्लों के लोग यहां आते रहे और बसते रहे हैं। इनमें प्रमुख प्रोटो अस्ट्रेलाइट, फैलियोमेडिटीरियन, काकेरॉशसाइड, निग्रोइड और मंगोलीय हैं। विभिन्न जातियताएं–आर्य, इरानी, यूनानी, हूण, अरब, तुर्क, अफ्रीकी, मंगोली और युरोपीय हैं। जातियां इस तरह से घुल–मिल गई हैं कि किसी भी जातियता का शुद्ध रूप कहीं भी आज उपलब्ध नहीं हैं। नतीजे में हमारी संस्कृति एक साझी संस्कृति के रूप में विकसित हुई है। हमारे पुरखों ने संस्कृतियों के इस मिलन को बहुत ध्यान से देखा था। शायद इसीलिए दो नदियों के संगम को तीर्थ रूप में पूजना शुरू कर दिया था। यह मात्र संयोग नहीं है कि दारा शिकोह ने हिंदू दर्शन पर लिखी अपनी फारसी पुस्तक का नाम ''दो महा समुद्रों का मिलन'' दिया। अपनी बात को पिनप्वाइंट करने के लिए हम लोग जिसे साझी संस्कृति कहते हैं उसे हिन्द–इरानी संस्कृति भी कहा जा सकता है।

स. अ.: साझी संस्कृति लुप्त सी प्रतीत हो रही है। ऐसा क्यों?

अ. कु.: पिछली सदी के शुरुआत में हिंदूकरण और इसके प्रतिक्रिया स्वरूप मुस्लिमीकरण के कारण आम लोग जिनकी एक ही संस्कृति थी धीरे–धीरे हिंदू एवं मुसलमान में बंटते चले गये। कट्टरपंथ के इन दृष्टिकोणों के कारण साझी संस्कृति को गहरा नुकसान पहुंचा। हिंदुओं ने मुस्लिम रीति–रिवाजों को छोड़ दिया। हालांकि यह विभाजन अभी भी पूरा नहीं हुआ है। इस दिशा में कोशिशें अभी भी ज़ारी है।

स. अ.: साझी विरासत एवं साझी संस्कृति से आम जन कैसे जुड़ा हुआ है?

अ. कु.: साझी संस्कृति के निर्माण में सूफी संतों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अपने प्रेम के संदेश के कारण सूफी–संत दोनों धर्मों से समान दूरियां बनाये रखते थे। परिणामस्वरूप वे दोनों धर्मों के समान रूप से निकट हो गये। उन्हीं के प्रयत्नों से हमारी संस्कृति न तो हिंदू संस्कृति रही, न ही मुस्लिम संस्कृति। बल्कि साझा संस्कृति के रूप में विकसित हुई।

स. अ.: साझी विरासत को साम्प्रदायिक शक्तियां नेस्तनाबूत करने पर तुली हैं। ऐसा क्यों?

अ. कु.: हमारे देश में साम्प्रदायिक सोच ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की देन है। 1857 में जब अंग्रेजों ने देखा कि यहां के दो बड़े समुदाय–हिंदू और मुसलमान मिलकर उनके खिलाफ उठ खड़े हुए हैं, तो उन्होंने योजनाबद्ध तरीके से साम्प्रदायिक विचारों का प्रचार–प्रसार किया जिसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक चिंतन शुरू हुआ। साम्प्रदायिक शक्तियां साझी संस्कृति की विरासत को खत्म किये बगैर अपनी जड़ें इस देश में नहीं जमा सकती थीं। इसीलिए दोनों साम्प्रदायिक शक्तियां साझी विरासत को ख़त्म करने पर आमादा हैं।

स. अ.: साझी विरासत के बावजूद हमारे देश में इतने साम्प्रदायिक दंगे क्यों होते रहते हैं?

अ. कु.: साम्प्रदायिक दंगों के पीछे स्पष्ट राजनैतिक कारण होते हैं। वे कभी सांस्कृतिक कारण से नहीं हुए। आज़ादी के पहले अंग्रेज साम्प्रदायिक दंगों का उपयोग राष्ट्रीय आंदोलन की धार कमज़ोर करने के लिए करते रहे है। अब यह बाकायदा सत्ता की राजनीति का अंग बन गया है। साम्प्रदायिकता अब संस्थाबद्ध रूप में हमारे समाज में परोसी जा रही हैं और धीरे–धीरे समाज में अपनी जड़ें मज़बूत कर रही है। साम्प्रदायिकता को संस्कृति के बजाय राजनैतिक हथियारों से ही रोका जा सकता है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन में एक ज़बरदस्त हिंदू रुझान या झुकाव स्पष्ट दिखायी देता है। दूसरे धर्मनिरपेक्षता को 'सर्वधर्म सम्भाव' के रूप में व्याख्यायित करने से भी हमारे राज्य का चरित्र बहुत हद तक धार्मिक तथा साम्प्रदायिक बन गया है जिसके कारण दंगे हमारे समाज का अंग बन गये हैं।

स.अ.: सूफी संतों द्वारा रचित कृतियां हमारे लिए जहां प्रेरणा का स्रोत हैं वहीं भेद–भाव आडम्बर का विरोध भी करतीं हैं। उनके काम को आप किस रुप में देखते हैं?

अ.कु.: सूफी संतों एवं भक्तों की रचनाएं हमेशा से हमारी प्रेरणा का स्रोत रही हैं, और रहेंगी। लेकिन मुझे नहीं लगता कि आज सिर्फ इन्हीं के जरिये हम अपनी लड़ाई को आगे बढ़ा सकेंगे। हमें इस समस्या का राजनैतिक और संवैधानिक हल खोजना होगा। तभी हम इस विकराल दैत्य से छुटकारा पा सकेंगे और अल्पसंख्यक नागरिकों के अधिकारों एवं उनकी सुरक्षा की गारंटी कर सकेंगे।

स.अ.: साझी विरासत एवं साझी संस्कृति का कोई ऐसा उदाहरण दें, जो सभी धर्मों, समुदाय एवं वर्ग का प्रतीक बन चुका हो?

अ.कु.: सूफी–संतों एवं फकीरों के मज़ारो पर हाज़री आज भी एक ऐसा प्रतीक है जिसमें सभी धर्म, सम्प्रदाय, जातियों, वर्गों की सीमाएं टूट जाती हैं। मैंने बचपन से हिंदुओं को इन संतों की छवि हिंदू विरोधी और मुसलमानों को इसे इस्लाम विरोधी बतलाने को कोशिश देखी है, लेकिन भारी संख्या में लोग धार्मिक एवं साम्प्रदायिक निषेधों की उपेक्षा करके साल दर साल अपनी हाज़री देते रहते हैं। हमारे जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे प्रतीक मिल जायेंगे। हमारा खान–पान, रीति–रिवाज़, शास्त्रीय संगीत, लोक साहित्य ऐसे प्रतीक है जहां साम्प्रदायिकता का भेदभाव मिट जाता है। शास्त्रीय गायक अपने गायन को एक इबादत के रूप में लेते हैं। यह उस विचार से उत्पन्न हुआ है जिसमें नाद को ब्रह्म कहा गया है। यह आज भी हमारी एकता का सबसे बड़ा प्रतीक है।

स.अ.: इस क्षेत्र में अपने कुछ अनुभव बतलाइए?

अ.कु.: मेरा शहर जौनपुर (उ.प्र.) हिन्द–इरानी संस्कृति का एक ज़बरदस्त गढ़ रहा है। दिल्ली की कट्टर इस्लामवादी संस्कृति के विरोध में जौनपुर के शर्की सुल्तानों ने उदार इस्लामवाद को वैचारिक हथियार बनाया था जिसने एक ऐसी ताकत को जन्म दिया कि इस शहर में लाख प्रयत्न करने पर भी न आज़ादी के पहले और न ही आज़ादी के बाद कोई साम्प्रदायिक दंगा हुआ। इस एकता का क्षरण मुझे हमेशा चिंतित करता है। जौनपुर में जन संस्कृति मंच की इकाई स्थापित करने के बाद से मैंने इस मुद्दे को हमेशा सबसे ऊपर रखा। हमारी गायन टीम यहीं लिखे गये तकाबुल (दोनों धर्मों के महापुरुषों की समरूपता के गीत) दूसरे जनवादी गीतों के साथ हमेशा गाती रही है। इन गीतों में भगवान राम और हज़रत इमाम हुसैन, भगवान कृष्ण और पैगम्बर हज़रत मुहम्मद

शेष पृष्ठ 16 पर.....

मीडिया

संजय कपूर

पिछले साल फरवरी में एक विदेशी दूतावास के कार्यक्रम के दौरान मुझे भारतीय मीडिया के उत्पीड़क व्यवहार की अनुभूति से गुजरना पड़ा। दरअसल उन्हीं दिनों एक प्रमुख पत्रिका ने भविष्य में होने वाले चुनावों में विभिन्न राजनीतिक दलों की संभावित स्थिति और विभिन्न नेताओं की सापेक्ष लोकप्रियता के बारे में जनमत सर्वेक्षण प्रकाशित किया था। इस सर्वेक्षण में यह इशारा किया गया था कि अगर तुरंत चुनाव होते हैं तो सत्ताधारी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) को लोकसभा में 320 से भी ज्यादा सीटें हासिल होंगी। इसी तरह तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को विपक्ष के किसी भी नेता से कहीं ज़्यादा लोकप्रिय बताया गया था।

कार्यक्रम के दौरान कुछ वरिष्ठ कूटनीतिज्ञ और विदेशी संवाददाता एक भारतीय पत्रकार को वहां पाकर उसकी ओर मुखातिब हुए और आने वाले चुनावों में सत्ताधारी गठबंधन की संभावनाओं पर चर्चा करने लगे। मैंने उनसे कहा कि राजग के दोबारा सत्ता में आने की कतई संभावना नहीं है क्योंकि दक्षिण राज्यों में इसका जनाधार खिसकता जा रहा है। अपने सशंकित मेज़बानों के समक्ष मैंने यह शंका भी ज़ाहिर कर दी कि देश के विभिन्न भागों में बह रही सरकार विरोधी हवा का रुख यह गठबंधन सरकार भला कैसे अपने पक्ष में मोड़ पाएगी। मेरे विचारों से आश्चर्य चकित हो मेरे मेज़बानों ने मुझे 'भाजपा विरोधी' बता कर बड़े ही सलीकेवान और भद्र तरीके से मेरे अतिवादी सुझावों को हंसी में उड़ा दिया। उन्होंने अपने आगंतुकों को लगभग आश्वासन देते हुए कहा– 'ये जनमत सर्वेक्षण झूठ नहीं बोल सकते। निश्चित रूप से 'भारत उदय' अभियान भाजपा को मदद पहुंचाएगा।'

उनकी इन बातों को सुनकर मुझे अहसास हुआ कि इन जनमत सर्वेक्षणों का कितना प्रभाव पड़ता है और यह कि भारतीय जनता पार्टी के प्रचारक क्या कुछ कर रहे हैं यानी वे मीडिया का इस्तेमाल एक ऐसे फासीवाद को हवा देने में कर रहे हैं जिसकी झलक पहले कभी नहीं देखी गयी। एक तरह से करोड़ों रुपयों से सिंचित बड़े स्तर के इस मीडिया अभियान का मक़सद सामाजिक बैठकों समेत हर कहीं विरोध के स्वर को दबाना और भाजपा के सत्ता में लौटने के दावे को विश्वनीयता प्रदान करना था। इसका मक़सद सरकार के साथ धंधा कर रहे विदेशी ठेकेदारों और व्यापारियें को यह बताना भी था कि चुनाव के आने की वजह से आशंकित हो वे धंधे संबंधी अपनी बातचीत बंद न करें; क्योंकि साफ दिख रहा है कि चुनाव के बाद भाजपा को ही वापिस सत्ता में आना है। यह दिखाने के लिए कि दिल्ली की गद्दी किसी दूसरे के हाथ में नहीं जाएगी, उन्होंने इन जनमत सर्वेक्षणों का तुरंत इस्तेमाल किया। भाजपा नेता हर किसी से यह कहते फिर रहे थे कि 'भारत उदय' अभियान और वाजपेयी जी का उत्कृष्ट काम हमारी वापसी को रोक नहीं सकते।'

भारतीय जनता पार्टी के इस बड़े खेल में प्रिंट व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया खुशी–खुशी इस्तेमाल होते रहे। 'भारत उदय' अभियान के चलते बांटी गई सरकारी रेवड़ियों को पाकर गदगद हो चुके सभी बड़े अखबार और चैनल बढ़–चढ़ कर यह माहौल बनाते रहे कि भाजपा जीत रही है।

लोगों को अपनी जीत का भरोसा दिलाने के लिए भाजपा के शीर्ष के नेताओं ने अकूत दौलत की ताकत के इस्तेमाल के साथ–साथ अपनी विश्वसनीयता पैदा करने का काम भी किया। एक अच्छा चुनाव अभियान चलाने में अपनी दक्षता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने राजस्थान, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में अपनी सफलताओं के उदाहरण पेश किए। इन चुनावी जीतों ने उन्हें प्रमोद महाजन और अरुण जेटली जैसे नेताओं को 'बरसात कराने वाले' नेताओं के रूप में पेश करने का मौका दे दिया यानी ऐसे नेता जिनके पास विपरीत परिस्थितियों में भी बरसात कराने की चमत्कारिक क्षमता है।

भारतीय जनता पार्टी बड़ी चालाकी से अपने पक्ष में माहौल तैयार करने लगी। हालांकि भाजपा नेता दृश्य माध्यम के प्रति ज्यादा सचेत थे फिर भी वे यह जानते थे कि टेलीविजन चैनलों को रास्ता दिखाने का काम अखबार और अखबारों के संपादकीय पृष्ठ ही करते हैं।

उधर अखबार और उनके संपादकीय पृष्ठ 'भारत उदय' अभियान और अमरीका व पाकिस्तान के संदर्भ में सरकार द्वारा किए जा रहे महान कार्यों का बखान करते नहीं अघा रहे थे। पाकिस्तान के साथ खेली गई क्रिकेट टेस्ट और एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय मैचों की श्रृंखला को वाजपेयी सरकार के कार्यकाल की उपलब्धि के रूप में दर्शाया जा रहा था। अखबार और उनके संपादकीय लेखक वाजपेयी सरकार की जीत और सरकार द्वारा दक्षिण एशिया क्षेत्र की राजनीति को एक नई परिभाषा देने का गुणगान करते नहीं थक रहे थे। कुछ समय तक तो हर अखबार और न्यूज़ चैनल शक्तिशाली प्रधानमंत्री कार्यालय से प्राप्त खबरों को ही तरजीह दे रहे थे। मीडिया में सरकारी गुणगान के अलावा न तो कुछ छप रहा था और न ही कुछ दिखाया जा रहा था। अगर कुछ छप रहा था या दिखाया भी जा रहा था तो उसे खास महत्व नहीं दिया जा रहा था। चुनाव संपन्न होने तक मीडिया तो सिर्फ़ भारतीय जनता पार्टी और इसकी तथाकथित महत्वपूर्ण उपलब्धियों से ही अभिभूत रहा।

संपादकीय पृष्ठों पर भाजपा की तारीफ में कसीदे काढ़ने के बाद अखबार और न्यूज़ चैनल इस बात की चर्चा में मशगूल हो गए कि लोगों द्वारा भाजपा को एक बार फिर चुन कर भेजने की क्यों ज़रूरत है, आखिरकार भाजपा को बहुत से अधूरे कामों को पूरा जो करना था। और मीडिया के इन मठाधीशों की नजर में ये ज़रूरी काम थे – स्वर्णिम चतुर्भुज रेलवे नेटवर्क और सरकारी क्षेत्र की इकाइयों का तेज़ी से निजीकरण करना। आर्थिक सुधारों के कुछ पहलू छूट गए थे, इसलिए उन्हें भी निपटाने के लिए भाजपा नेतृत्व वाली सरकार का होना नितांत आवश्यक था। कूटनीति के क्षेत्र में भारीभरकम तर्क दिए गए। कहा गया कि यदि भाजपा को सत्ता में लौटने से रोका गया तो वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में भारत नीचे खिसकता जाएगा। भाजपा की सत्ता में वापसी को रोकने के कांग्रेस और वामदलों के प्रयासों की खिल्ली उड़ाई गई। मीडिया क्षेत्र के पेशेवर लोग यही तर्क दिया करते थे कि उनका अभियान शुरू ही नहीं हो सकता। जब तक चुनाव आयेंगे तब तक उनके संसाधन समाप्त हो चुके होंगे।

कुछ ही महीनों के भीतर 300 करोड़ रुपए के सरकारी विज्ञापन डकार चुके भारतीय मीडिया के लिए भाजपा सरकार का फिर से चुन कर आना तो खुद उनके लिए नफे और नुकसान का सवाल बन चुका था। उसके लिए वाजपेयी 'अच्छे दिनों के सम्राट' थे।

सत्ताधारी दल और मीडिया की बढ़ती अंतरंगता अनेक तरीकों से दिखायी देने लगी। टेलीविजन चैनलों के न्यूज़रूम आतंकित करने वाले इन किस्सों से अटे पड़े हैं कि जिन–जिन राजनीतिक विशेषज्ञों का नज़रिया भाजपा विरोधी था उन्हें या तो चैनल पर बोलने के लिए बुलाया ही नहीं जाता था या फिर बुलाने के बाद परदे पर बहुत कम दिखाया जाता था। यहां तक कि स्वतंत्र सोच वाले रिपोर्टरों द्वारा पार्टी की उल्टी तस्वीर पेश करने पर उन्हें अलग–थलग कर दिया जाता था या फिर उनकी रिपोर्टों की इस तरह काट–छांट की जाती थी कि उनका पैनापन ही खत्म कर दिया जाता था। एक प्रमुख टेलीविजन के एंकर को तो संपादक द्वारा भाजपा के बड़े नेताओं की आलोचना करना बंद करने तक के लिए कह दिया गया।

अखबारों में भी यही सब किया गया। इन अखबारों की ज़्यादातर खबरें सच्चाई बयान नहीं करती थीं। भाजपा और उसके सहयोगी दलों की सरकारें जहां–जहां थीं उनकी कारगुजारियों को बताने पर तो और भी अधिक पाबंदी थी। अनेक प्रमुख अखबारों में तो जानबूझ कर सरकार के पसंदीदा विशेष संवाददाता रखवाए गए थे ताकि सरकार व दल के पक्ष में ज़्यादा से ज़्यादा खबरें दी जा सकें। धर्मनिरपेक्ष सोच रखने वाले संवाददाताओं को तो धीरे–धीरे किनारे कर दिया गया।

कहने की ज़रूरत नहीं कि ज़्यादातर संपादकों ने भाजपा के शीर्षस्थ नेताओं के आगे हथियार डाल दिए थे। कई न्यूज़ चैनलों की विस्तार योजना को अधर में लटका कर उन्हें भारतीय जनता पार्टी की राजनीतिक सोच को आगे बढ़ाने के लिए मजबूर किया गया। ज़्यादातर मीडिया प्रमुखों ने इन दबावों का विरोध भी नहीं किया। आखिर करते भी क्यों, उन्हें और उनके संगठनों को वित्तीय लाभ जो हो रहा था। अखबारों और न्यूज़ चैनलों को सरकार से मिले विज्ञापनों पर किया गया एक अध्ययन स्पष्ट संकेत देता है कि सत्ता की निकटता खबरों की दुनिया से जुड़े संगठनों के भाग्य चमका देती है। इस तरीके से बढ़ते हुए धन का मीडिया जगत पर बहुमुखी प्रभाव पड़ा और क्षेत्रीय मीडिया भी अब इसी राह पर चल पड़ा है। भाजपा की दूसरी चालाक तरकीब, जो बाद में उसके लिए ही भारी

पड़ गयी, अखबारों को जनमत सर्वेक्षण के माध्यम से जनता की भावना बेचनी थी। पहले तो सर्वेक्षण जनित जनमत को असंख्य बार हर हफ्ते चौबीसों घंटे न्यूज़ चैनलों पर दोहराया जाता रहा फिर बाद में वही सर्वेक्षण रिपोर्ट अखबारों में दी गयी। दैनिक अखबारों के विशेष संवाददाताओं की बहुत कम रिपोर्ट ही दिखायी देतीं थीं। ज़्यादातर अखबार तो बस टेलीविज़न द्वारा करा गए जनमत सर्वेक्षण को ही छाप रहे थे।

भाजपा के रणनीतिकारों ने सोचा था कि यह योजना कारगर सिद्ध होकर रहेगी। मीडिया पर शोध करने वालों द्वारा किए गए एक अध्ययन में यह बात सामने आई कि लगभग सभी चैनल अपने प्रसारण समय के 90 फीसदी हिस्सों में भाजपा नेताओं को ही दिखाते रहे।

यह माहौल लड़खड़ाते चुनावी अभियान के दौरान उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया जब चैनल खुद के जनमत सर्वेक्षण और फिर बाद में मतदान के दिन के सर्वेक्षण दिखाने लगे। सबसे अधिक खराब बात तो यह थी कि लगभग सभी चैनल पहले दौर के मतदान के आधार पर ही संभावित चुनाव परिणामों की घोषणा करने लगे। और इनमें से ज़्यादातर चैनल भारतीय जनता पार्टी के सत्ता में लौटने का डंका पीटते रहे।

इन सर्वेक्षणों में से अनेक तो, ख़ासकर संघ परिवार के चहेतों द्वारा किए गए सर्वेक्षण, इतने अधिक सरलीकरण पर आधारित थे कि उन्होंने आंध्र प्रदेश या तमिलनाडु जैसे राज्यों में बह रही विपरीत हवा को महसूस करना भी उचित नहीं समझा। इसका भी कारण था। कम से कम दो सर्वेक्षण तो एक ही सामग्री पर आधारित थे, केवल नतीजे जरा से भिन्न थे। यही कारण है कि सभी के चुनाव–परिणाम संबंधी आंकलन गलत साबित हुए। तीसरे दौर के अंत तक यही कहा जाता रहा कि भाजपा नेतृत्व वाला गठबंधन ही सत्ता में आएगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

निःसंदेह कोई भी दल खुद की समीक्षा करने में गलती कर सकता है, लेकिन अहम सवाल यह खड़ा होता है कि चुनाव परिणाम से आखिर मीडिया क्यों भौंचक्का रह गया? देखा जाए तो कुछ संपादक उस शंखनाद के शोर में बहरे हो गए थे जो उन्होंने खुद भाजपा नेताओं की हौसला अफज़ाई के लिए पैदा की थी। दरअसल उनके अंदर महत्वाकांक्षाएं पैदा होने लगी थीं–अगर भाजपा वापिस सत्ता में आती है तो वे बड़े–बड़े सरकारी ओहदों पर आसीन हो सकते हैं, राजदूत आदि बन सकते हैं। दूसरा कारण था कि बहुत सारे संवाददाता और संपादक इस बीच भाजपा व राजग नेताओं के करीबी बन चुके थे। बहुत बार तो यह एक–दूसरे के प्रशंसकों का क्लब नज़र आता था। ऐसे में क्या वाकई आश्चर्य होता है कि भाजपा की तरह मीडिया भी यह लड़ाई हार गया ?

अनुवाद–पीयूष पंत

अल्टर्नेटिव इकोनॉमिक सर्वे, इंडिया से साभार

...मेरे जीवन का एक बड़ा हिस्सा उन जीवन मूल्यों को अनावृत्त करने में बीता है, जो हमें बांटते और खंडित करते हैं। राजनैतिक शब्दावली में इसका आशय है कि जो बहुलतावादी और सेकुलर है, उसका समर्थन किया जाए। कुछ अमेरिकनों और अनेक यूरोपीयों की तरह मैं एक ऐसी दुनिया में रहना पसंद करूंगी जिसमें किसी एक देश का प्रभुत्व न हो और जो बहुविध हो। एक ऐसी शताब्दी में जो अतिवाद और दुःस्वप्न की शताब्दी होने का आभास दे रही है, मैं उन मूल्यों के प्रति अपनी प्रतिश्रुति ज़ाहिर करती हूं, जिसे वर्जीनिया वूल्फ ने ''सहिष्णुता का निस्संग नैतिक गुण'' कहकर परिभाषित किया था। और यह घोषणा सर्वप्रथम एक लेखक के रूप में करना चाहती हूं, क्योंकि साहित्य की साधना के अलावा मेरा कोई और दावा नहीं है।...

...साहित्य का एक काम ये है कि वह सत्ताधीशों से पूछने के लिए प्रश्न और प्रतिप्रश्न तैयार करे। जब कला में विरोधपरकता नज़र न आए, तब भी वह उसी ओर झुकी होती है। साहित्य संवाद है, साहित्य प्रत्युत्तर है। जब संस्कृतियां विकसित होती है और एक–दूसरे के संपर्क में आती हैं तब साहित्य मानवीय संवेगों का इतिहास बनकर उभरता है और बताता है कि क्या जीवंत है और क्या मृतप्राय।

सूसन सोनताग

अमरीकी साहित्य की सुविख्यात लेखिका

धर्मनिरपेक्षता बनाम सांप्रदायिकता

प्रिय साथी,

उत्तर प्रदेश के चित्रकूट ज़िले में संघ परिवार की विहिप किस तरह सांप्रदायिकता का ज़हर फैला रही है और धर्मनिरपेक्ष ताकतें किस तरह से सांप्रदायिकता का विरोध कर रही हैं इसकी एक मिसाल हम साथियों के सामने रख रहे हैं। आपके जिलों में भी अगर इस तरह का संघर्ष और आंदोलन हो रहा हो तो समरथ को ज़रूर भेजें।

मिस्टर इमाम,

फतेहपुरी मस्ज़िद, नई दिल्ली,

12 जनवरी शुक्रवार (जुमा) को नमाज़ बाद दिये गये तुम्हारे भाषण के मुताबिक तुमने साम्प्रदायिक ताकतों (संघ परिवार) को एक चेतावनी दी है। इसी संदर्भ में तुम्हें यह स्पष्ट करना आवश्यक हो गया है, कि इस दुनिया में केवल दो साम्प्रदायिक ताकतें हैं। पहली साम्प्रदायिक ताकत मुसलमान हैं और दूसरी ईसाई।

तुम्हारे और तुम्हारी जैसी ज़ेहनियत रखने वालों के लिये यह जान लेना ठीक होगा कि हिन्दू एक ताकत तो है, किन्तु साम्प्रदायिक ताकत नहीं। 'हिन्दू' न कभी साम्प्रदायिक रहा, और न होगा। चाहे वह जैन हो, सिख हो या बौद्ध तथा सनातनी हो। इतना ही नहीं राजनीति परिचय और कार्य के नाते भी चाहे वह भाजपाई, कांग्रेसी, सोशलिस्ट या कम्युनिस्ट कुछ भी क्यों न हो। वह और कुछ भी हो सकता है, लेकिन साम्प्रदायिक कभी नहीं।

उसने (हिन्दू ने) कभी किसी राष्ट्र या जाति पर हमला नहीं किया। किसी का जर्बदस्ती धर्म और आस्था परिवर्तन नहीं किया। कभी भी छद्म सेवाधारी बनकर किसी गरीब, अनपढ़ और सीधे–सरल लोगों की आस्था–विश्वास के साथ छल नहीं किया।

उसने हमेशा विश्व को शाश्वत जीवन दर्शन का साक्षात्कार कराया है। विवेकानन्द से लेकर महेश–योगी और भगवान रजनीश (ओशो) जैसे लोग इसके ताजा उदाहरण हैं।

''धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो'' यह हिन्दुओं का नारा है। अर्थात् हिन्दू को धार्मिक ताकत की तरह तुम पहचान सकते हो। धार्मिक ताकत का परिचय 6 दिसम्बर 1992 को सम्पूर्ण विश्व प्राप्त कर चुका है। विश्वास है तुम्हें भी यह परिचय भूला नहीं होगा। मेरा यह पत्र तुम्हारी याद्दाश्त ठीक करने में मदद करेगा। असल में धार्मिक ताकत अतिसहनशील, धैर्यवान, शीलवान, क्षमाशील, किन्तु उच्चकोटि की वीरता के तेज से दहकती और धधकती हुई होती है। जबकि साम्प्रदायिक ताकत (मुस्लिम) केवल एक बलात्कारी ताकत ही होती है। मुस्लिम ताकत का तेरह–चौदह सौ साल का इतिहास केवल लूट–पाट, अय्याशी और बलात्कार का इतिहास है। मुस्लिम ताकत (साम्प्रदायिकता) ने कभी अच्छे काम नहीं किये। आज भी सारी दुनिया मुसलमानों के उपद्रव से बेचैन और परेशान है।

आज के ही अखबार में बरेली के किसी 'नूरी' का बयान **विहिप** द्वारा अयोध्या में दावा छोड़ देने की सलाह पर आधारित है। मुसलमानों को यह भ्रम तोड़ लेना चाहिये कि अयोध्या ही नहीं, भारत में कहीं भी अब बाबरी मस्जिद नाम की मस्जिद न कोई मुसलमान बना सकेगा और न ही कोई सरकार। इस पत्र की एक फोटो प्रति कराइये और नूरी को भेज दीजिये। मुझे उसका पता मालूम नहीं है। साम्प्रदायिकता की समझ खोलने के विनम्र उपाय के साथ!

बुद्धराज सिंह
जिला महामंत्री
वि.हि.प. (चित्रकूट)

(इस पत्रक का सार्वजनिक वितरण व्यक्तिगत रूप से किया गया)

दुनियां के मेहनतकशों एक हो

इन्कलाब ज़िन्दाबाद

साम्प्रदायिकता मुर्दाबाद

चित्रकूट का यह सन्देश।
रहेगा भारत देश ।।

प्रभुस्नेही साथी बुद्धराज सिंह
जिला महामंत्री, वि.हि.पि.,चित्रकूट

मिस्टर इमाम फतेहपुरी मस्जिद को सम्बोधित व्यक्तिगत रूप से सार्वजनिक वितरित आपके द्वारा दिया गया पत्र पढ़ने को मिला। पत्र का मज़मून एवं लिखने का सलीका यह समझने के लिए काफी है कि आप एक साम्प्रदायिक संगठन के सदस्य है। भारतीय सभ्यता, संस्कृति, संस्कार और सनातनी परम्परा का मुँह चिढ़ाता आपका पत्र किसी भी धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति को शर्मसार करने के लिए पर्याप्त है जिस हिन्दू शब्द को आप गले से चिपकाये हैं शायद उस शब्द को भारत के ऋषिमुनि एवं पौराणिक ग्रन्थों के लेखकों ने कभी अपना विषयवस्तु नहीं बनाया। भगवानोंवाच गीता में भी इस शब्द को स्थान नहीं मिला। यहां यह कहना प्रासंगिक होगा कि यह शब्द तेरह–चौदह सौ साल के इतिहास को ही बयां करता है। धार्मिक ताकत अतिसहनशील, धैर्यवान, शीलवान, क्षमाशील होती है, आपके इस विचार से मैं पूर्ण सहमत होते हुए ये जानना चाहता हूं कि 6 दिसम्बर 1992 की वो घटना जिसे सम्पूर्ण विश्व जान चुका है जिसका जिक्र आपने अपने पत्र में किया है, क्या यही धार्मिक ताकत है यदि हां तो क्या इसे ही साम्प्रदायिकता कहते हैं। आपकी क्षमाशीलता का नमूना ही था संसद, उच्चतम न्यायालय एवं राष्ट्रीय एकता परिषद को लिखित आश्वासन के बाद बाबरी मस्ज़िद का विध्वंस और पूरे देश में नरसंहार, लूट व आगजनी का तांडव। इसी धैर्यवान शक्ति का नमूना था उड़ीसा में ईसाई मिशनरी ग्राहम स्टेंस को बच्चों समेत जिन्दा जलाना तथा उनके हत्यारे दारा सिंह को महिमा मंडित करना। आपकी इसी शीलवान विचारधारा का नमूना है सतीप्रथा जिस पर प्रतिबंध के लिए हर इंसाफ पसंद व्यक्ति शहनशाह अकबर, लार्ड विलियम बैंटिक तथा राजा राममोहन राय का सदा आभारी रहेगा। इसी विचारधारा के कारण देवदासी प्रथा आज तक जारी है जो किसी सभ्य समाज के माथे पर बदनुमा दाग है। आपकी क्षमाशील और धैर्य के कारण ही बौद्ध भिक्षुओं तथा उनके अनुयायियों को जान बचाकर लद्दाख, तिब्बत, सिक्किम, भूटान तथा अन्य सुदूर दुर्गम स्थानों को पलायन करना पड़ा अथवा सरकलम हो गये। आज कुशीनगर, सारनाथ, बोधगया आदि में कहीं ढूंढकर भी भारतीय बौद्ध नजर नहीं आते। अपने उद्गम स्थल से ही ये धर्म विलुप्त हो गया। आपके इसी रवैये से तंग आकर डा. अम्बेडकर महात्मा बुद्ध की शरण में चले गये।

मुस्लिम समाज की सबसे बड़ी देन भारत के एकीकरण की है। देश के लिए मुसलमानों की कुर्बानी बेमिसाल है। कौन कृतघ्न डा. मुख्तार अहमद अंसारी के **'साईमन वापस जाओ'** आन्दोलन को भूल सकता है। **मौलाना मुहम्मद अली जौहर** ने लंदन में गोलमेज कांफ्रेंस के दौरान ललकारा था कि मैं **आजादी का परवाना लेकर ही भारत वापस जाऊंगा या फिर मृत्यु। मैं गुलाम भारत में जाने से पहले मरना पसंद करूंगा वहीं कांफ्रेंस में मौलाना ने मृत्यु का वरण किया और लाश** ही भारत वापस आ सकी। भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम 1857 के नायक बहादुर शाह जफर, बेगम हजरत महल, शहजादा बिरजीस कद्र, अजीम उल्ला, लियाकत अली मोलवी अहमद शाह, बख्त खां, गुलाम गौस झांसी, नवाब बांदा अली बहादुर खां सानी आदि के कारनामों पर हर देशभक्त सदा झूम उठेगा। राष्ट्रीय आन्दोलन में बदरूद्दीन तैयब जी, सर हसन इमाम, सैयद इली जहीर, सज्जाद जहीर, जनरल शाहनवाज खां मुजफ्फर अहमद, हसरत मोहानी, रफी अहमद किदवई, हकीम अजमल खां, डा. जाकिर हुसैन, साहबजादा महमूदुज्जुर, मख्दूम मोइनउद्दीन, शौकत उस्मानी, काकोरी कांड के हीरो शहीद अश्फाक उल्ला खां आदि के नाम सुनहरे अक्षरों में लिखने में काबिल हैं।

1948 में प्रथम पाकिस्तानी आक्रमण का मुंहतोड़ जवाब देकर वीर गति को प्राप्त होने वाले शहीद मेजर उस्मान तथा 1965 के भारत – पाक युद्ध के नायक वीर अब्दूल हमीद आज भी हमारे प्रातः स्मरणीय है। मुसलमानों ने भारत को गंगा–जमुनी तहजीब, उर्दू जबान, ताजमहल, मिर्जा गालिब जैसे अनमोल रत्न दिये। शहंशाह अकबरे आजम की सुलहे–कुल नीति के पंचशील सिद्धांत तथा संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणा पत्र आधुनिक प्रतिबिम्ब मालूम होते हैं। सम्राट औरंगजेब द्वारा इसी पावन तीर्थ चित्रकूट में बालाजी मन्दिर का संरक्षण साम्प्रदायिक सौहार्द का बेमिसाल नमूना है। मुसलमानों की सूफी परम्परा ने भाईचारे का संदेश दिया। अजमेर के ख्वाजा मोइनउद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया, ख्वाजा मीर दर्द से लेकर आसी गाजीपुरी तक सबने प्यार, मोहब्बत, बराबरी तथा सर्वधर्म समभाव की तालीम दी और भारत के करोड़ों दबे कुचले शोषित, उपेक्षित दरिद्र नारायण ने उनकी शिक्षाओं को ग्रहण किया। इसी संदेश को कबीर, जायसी, रहीम, उस्मान, ताजबीबी, रसखान तथा नजीर अकबराबादी ने आगे बढ़ाया। इन सबकी मेहनतों का नतीजा था कि काफिले आते गये हिन्दोस्तां बनता गया अल्लामा इकबाल जैसे शायर ने राम को इमामे हिन्द (भारतीय जननायक) कहा है। सम्प्रति भारत सरकार के रक्षा सलाहकार भारत रत्न ए. पी. जे. अब्दुलकलाम द्वारा निर्मित रक्षा उपकरणों

को वाजपेयी सरकार गर्व से अपनी उपलब्धियों में गिना रही है। हां ये सच है कि मुसलमानों के बीच आपके कार्य को तालिबान के भारतीय संस्करण जमाअत इस्लामी के बंधु कर रहें हैं जिनसे संघ परिवार आपातकाल से ही दोस्ती गांठे हुए है।

आधुनिक भारत के निर्माण में इसाई समुदाय की भूमिका उल्लेखनीय है। दीनबन्धु, सी.एफ.एन्ड्रूज, एनीबेसेन्ट, कामिल बुल्के तथा मदर टेरेसा आदि विभूतियों ने राष्ट्र निर्माण में अविस्मरणीय योगदान किया है। इस समुदाय ने आधुनिक शिक्षा, चिकित्सा, महिला जागृति एवं अछूतोद्धार के क्षेत्र में बेमिसाल सेवा की है। मिशनरी सम्पर्क में आकर ही कतिपय हरिजन, गिरिजन, आदिवासी आदि आधुनिक शिक्षा ग्रहण कर सभ्य समाज के अंग बन सके अन्यथा आपकी विचारधारा उन्हें गोबर फेंकने के लिए बंधुआ मजदूर ही बनाए रखती।

आपकी सहनशीलता का नमूना था भा.ज.पा. की गठबंधन सरकार का पहला कारनामा परमाणु विस्फोट कर विश्व शान्ति के ताबूत में एक कील और ठोंकना। जवाब में परम्परागत पड़ोसी पाकिस्तान का परमाणु विस्फोट। इस युद्धोन्माद व नफरत की पराकाष्ठा का नाम है फासिज्म। हिटलर इसका प्रतीक था। उसकी यही विचारधारा दो विश्वयुद्धों का कारण बनी। रही बात कम्युनिस्टों की तो यह सर्वविदित है कि कम्युनिस्ट शासन एक आदर्श नमूना होता है चाहे 1984 के सिख विरोधी दंगे हों या बाबरी मस्जिद प्रकरण हो या बेगुनाह मिशनरियों पर आक्रमण का दौर हो। पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा तथा केरल की कम्युनिस्ट सरकारों की छत्रछाया में आपके किसी सूरमा की बेगुनाहों मजलूसों व अल्पसंख्यकों की ओर टेढ़ी नजर से देखने की जुर्रत नही हुयी। स्वयं श्री लालकृष्ण आडवाणी जी अपना दंगा रथ लेकर इन प्रदेशों में घुसने का साहस नहीं जुटा सके।

धर्मनिरपेक्ष भारत में अपने धार्मिक विश्वास का शान्ति पूर्वक प्रचार प्रसार करना प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार है। धार्मिक आजादी किसी भी सभ्य समाज का प्रतीक होती है। धर्म के नाम पर संकीर्ण आस्था ज्यादा टिक नहीं पाती। इसीलिए ऐसे तत्व इस मौलिक अधिकार से घबरा जाते हैं और वे दूसरों पर जानलेवा हमले, उनकी इबादतगाहों पर आक्रमण तथा ननों के साथ बलात्कार आदि कर बैठते हैं।

हम अगर अर्ज करेंगे तो शिकायत होगी।
लाल सलाम

रूद्र प्रसाद मिश्र
एडवोकेट

पृष्ठ 10 का शेष.....

साहब, बजरंग बली और हज़रत अली के जीवन के सादृश्य के गीत प्रमुखता से गाये गये। मंच की नाटक टीम में अन्य दूसरी समस्याओं के अलावा कई साम्प्रदायिकता विरोधी नाटक शहर के चौराहों एवं नुक्कड़ों पर मंचित किये। गुजरात के दंगों के बाद हमने कवियों एवं साहित्यकारों को लेकर नुक्कड़ों पर साम्प्रदायिकता विरोधी कविता पाठ का आयोजन किया, जुलूस निकाले एवं चौराहों–चौराहों पर गीत और नाटक प्रस्तुत किये।

स. अ.: जनपद जौनपुर को शीराज़–ए–हिन्द कहा गया है। यह अन्य शहरों से किस अर्थ में भिन्न है?

अ. कु.: जौनपुर को शीराज़–ए–हिन्द की उपाधि मुगल सम्राट शाहजहां ने ज्ञान–विज्ञान और विद्या नगरी के रूप में मान्यता के तौर पर दी थी। जैसा कि मैंने अभी कहा है कि यहां आज़ादी के पहले और बाद अब तक कोई दंगा नहीं हुआ। यहां की संस्कृति सही अर्थों में साझी संस्कृति कही जा सकती है। बेशक पुरानी परम्पराएं शिथिल हो रही हैं लेकिन ख़त्म नहीं हुई हैं। इन्हें बचाये रखने के लिए हम जो कुछ कर सकते हैं करना चाहिए।

स. अ.: यह साझी विरासत अगली पीढ़ी तक किस तरह से सुरक्षित रूप में पहुंचायी जा सकती है?

अ. कु.: हम एक कठिन समय में जी रहे हैं। साम्राज्यवाद ने साम्प्रदायिकता, अंधविश्वास और कट्टरपंथ को योजनाबद्ध ढंग से हमारे और दूसरे विकासशील देशों में फैलाने का काम किया है। भारत का मौजूदा शासक वर्ग जनता की एकता को भंग कर गुलाम बनाये रखने के लिए साम्प्रदायिकता को पाल–पोस रहा है। हमें क्रांति के अधूरे एजेंडों को पूरा करने के लिए प्राण–प्रण से जुट जाना चाहिए। तभी इस साझी संस्कृति की रक्षा हो सकेगी और आने वाली पीढ़ियों के हाथों में सौंप सकेंगे।

स. अ.: **समरथ पत्रिका** की ओर से पुनः धन्यवाद और हार्दिक शुभकामनाएं।

अ.कु.: शुक्रिया।

दी नेचुरल फ़ीलिंग

योगेश भटनागर

''मैं एबोर्शन नहीं करवाऊँगी। आज ही डाक्टर सेन कह रहे थे, ''वैसे भी हिमांशु अब तीन साल का हो गया है। यू कुड गो फॉर ए सेकिण्ड चाइल्ड।'' सरला प्रकाश के कन्धे पर सिर रखे रोये जा रही थी और बार–बार यही कह रही थी कि वो एबोर्शन नहीं करवायेगी।

कहने को तो प्रकाश और सरला दोनों ही मेकेनिकल इंजीनियर और आई.आई.एम. अहमदाबाद से एम.बी.ए. थे। तीन साल अहमदाबाद में साथ–साथ पढ़े थे। सरला दिल्ली की थी और प्रकाश बेंगलूर का। दोनों ने लव मैरिज की थी। सरला के कहने से प्रकाश ने दिल्ली में ''नेस्ले कॉफी कम्पनी'' में नौकरी शुरू की क्योंकि सरला को सीमन्स के एक्सरे मशीन के यूनिट में आई.आई.एम कैम्पस में ही नौकरी ऑफर हो गयी थी। सरला के ग्रेडस हमेशा प्रकाश से अच्छे रहते थे। मौके की बात थी कि दोनों के ऑफिस कनॉट प्लेस में ही थे इसलिये दोनों साथ ही आया–जाया करते थे। अक्सर शाम को बाहर किसी ढाबे में ही डिनर करके लौटते थे।

कैरियर कान्शस थे दोनों ही इसलिये शादी के. फौरन बाद ही एबोर्शन्स का सिलसिला चला पाँच साल से भी ज़्यादा। इस दौरान ही रिसपैक्टेब्ल इन्कम ग्रुप में पहुँच गये थे। साऊथ एक्स (दिल्ली की सबसे पॉश कॉलोनी) में दो बेडरूम का मकान भी ले लिया था और नई फिएट भी कम्पनी के लोन से। घर में सभी इलेक्ट्रिक गेजेटस थे।

इन पाँच सालों में आठ एबोर्शन करवाने पड़े थे सरला को क्योंकि बच्चे रोकने का कोई भी ओरल या फ़िजिकल तरीका सरला को तीन–तीन महीने से ज़्यादा माफिक ही नहीं आता और रिऐक्शन शुरू हो जाता। कोई सिर दर्द देता, कोई चक्कर, कोई उल्टियाँ, कोई नौसिया, कोई ब्लड प्रेशर और कोई एकसेसिव और फ्रिक्वेन्ट ब्लीडिंग। नतीजा हफ़्ता भर बिस्तर पर पड़ी रहती। एनीमिक हो जाती और हारकर फिर एबोर्शन का सहारा लेना पड़ता क्योंकि प्रकाश मानता ही नहीं था। फिर कमज़ोरी दूर करने के लिए सेलाइन और विटामिन टेब्लेटस वगैरह लेकर कम से कम छुट्टी में यह काम भी करना पड़ता। इस सबका असर उसके कैरियर पर पड़ा था और वो प्रकाश से इस रेस में पिछ़ड़ गयी थी जिससे वो खुश नहीं थी। डॉ. सेन के मुताबिक उसकी बॉडी किसी भी किस्म के हारमोनल ड्रग्स या फौरिन मेटिरियल एक्सेप्ट नहीं करती। 'क्या वजह हो सकती है, डॉक्टर इसकी' उसने पूछा।

''तुम्हारी तरह के केसेस दस हज़ार में एक होते हैं। क्या वजह है यह तो मेडिकल साइन्स में पता नहीं। हो सकता है तुम्हारे सबकान्शस में माँ बनने की बहुत ही स्ट्रांग डिज़ायर हो। हो सकता है माँ बनने के बाद तुम्हारा नार्मल हो जाये? वैसे भी शादी को पाँच साल हो ही गये हैं। इतना फ्रीकवेन्टली एबोर्शन भी मेडिकली अच्छा नहीं है। प्रकाश से कहो वही होशियारी बरते। उसके लिये ज़्यादा आसान है।''

''डॉक्टर, प्रकाश तो सुनता ही नहीं है।''

''तब तो अच्छा यही है कि यह बच्चा हो जाने दो। इससे तुम्हारे अन्दर मदरहुड को एक्सप्रेशन मिलेगा और तुम सइकोलोजिकली और मेन्टली काफी स्ट्रांग हो जाओगी।''

जब सरला ने यह सब बताया तो प्रकाश ने कहा–''मुझे कुछ भी इस्तेमाल करने से अननेचुरल फ़ीलिंग होती है। अच्छा नहीं लगता। लगता है जैसे... पता नहीं कैसा लगता है। बता नहीं सकता। मैं हमेशा नेचुरल फ़ील करना चाहता हूँ।''

सरला को बहुत गुस्सा आया उसने चिल्लाकर कहा–''तुम जैसे बेमुरव्वत और बेरहम इन्सान भी शायद कम ही होते होंगे। अपनी खुदगर्ज़ी की खातिर तुमने मुझे इन्सान से बद्तर समझा है इन पाँच सालों में। कोई खिलौने को भी ऐसे नहीं रखता जैसे तुमने मुझे रखा है। मेरी मर्ज़ी कभी

पूछने की ज़रूरत ही नहीं समझी तुमने। तुम और तुम्हारी नेचुरल फ़ीलिंग जाये भाड़ में। डॉक्टर के मुताबिक यह बच्चा पैदा करती हूँ। उसके बाद सोचा जायेगा।'' पता नहीं प्रकाश ने सुना या नहीं। सरला ने 269 वें दिन आठ पौंड के हिमांशु को पैदा किया। तब उसने महसूस किया कि डॉक्टर सेन ठीक ही कहते थे। शायद पाँच बरसों से वो माँ बनने को ही तरस रही थी। इस नेचुरल फ़ीलिंग को साईन्स के तरीकों से घोट–घोट कर मार रही थी। इसलिये सभी ओरल, फ़िजिकल, इन्टरनल और एक्सटर्नल तरीके उसकी बॉडी रिजेक्ट करती रही। कैसी बेवकूफ़ थी वो। यह अब समझ में आया। आज जब यह उन्नीस इंच और आठ पौंड का इन्सान उसके दिल के नीचे उसकी छातियाँ चूसता है तो हर बार मीठी अनुभूति को जन्म देता है। दिन में बीस बार उसको यह अनुभूति होती है और हर बार प्यारी लगती है। हालाँकि हर बार करवट भी नर्स की मदद से लेनी पड़ती है। जब यह इन्सान रात में रो कर जगाता है, घन्टों सोने नहीं देता तो भी यह अनुभूति प्यारी ही लगती है।

प्रकाश पर तो हमेशा गुस्साती, खीजती और चिढ़ती थी जब वो आधी रात को जगाता और पाँच मिनटों के बाद उसे घन्टों जागने के लिये छोड़ देता। जब भी एबोर्शन करवाना होता तो प्रकाश भी रातों को उसकी छाती से लिपट कर रोता थोड़ी देर और छातियों में मुँह छिपाये अपनी नेचुरल फ़ीलिंग की फ़ील करके सो जाता। और वो करवट लेकर रोती रहती। इस करवट और उस करवट में, इस रोने में और उस रोने में कितना फ़र्क है यह सरला को अब समझ में आया। एक करवट और रोना उसको एक गुनाह का अहसास देता था और यह करवट और रोना हम दोनों को अपार तृप्ति और असीम सन्तुष्टि देते हैं। इसके रोते ही खुद वो अपने आप अपनी छातियाँ इसके आगे करते नहीं थकती। हर बार वो इस नन्हीं सी जान में समा जाना चाहती है। खुद ही कस कर चिपटाती है इसे अपने बदन से। इस चिपटन के अपार आनन्द से उसकी आँखें मुँद जाती थीं पर कभी थकान महसूस नहीं होती थी न ही कभी लगता अपनी छातियों को अपने पल्लू से ढक ले। उसको अब महसूस हुआ कि आसमान की तरह असीम है उसका सारा शरीर और समन्दर की तरह अथाह हैं यह छातियाँ। उसको लगा कि यह इन्सान पूरे चाँद की तरह उसके शरीर को चमक और ठँडक दे रहा है और यह छातियाँ समन्दर की तरह अपने प्रियतम चाँद से मिलने के लिए उफनती रहती हैं। यही मदरहुड है, सरला, उसका मन कहता है। यही सब महसूस करती रही वो सारा हफ़्ता जो उन दोनों ने साथ–साथ हस्पताल में गुजारा।

घर आने के बाद सरला अपने हिमांशु में खोयी रही। प्रकाश तो जैसे उसकी ज़िंदगी से बाहर ही हो गया था। नौकरी का ख्याल आता ही नहीं था। प्रोड्क्शन मैनेजर सरला नौटियाल सुन्दरम की छुट्टी तो लेकिन खत्म हो रही थी। इसलिये 20 दिन पहले ही एक फुलटाइम 22 साल की आया रख ली। इन 20 दिनों में सरला ने नसीम को सब कुछ बतायाः कब दूध पिलाये, कब सुलाये, कब नहलाये, कितने गर्म पानी में नहलाये, नहलाने से पहले थर्मामीटर डालकर गर्म पानी का टेम्परेचर नोट ज़रूर करे। कभी भी 35^0 भी सेंटीग्रेड से ज़्यादा गर्म ना होने दे, नहलाने के आधे घन्टे बाद ही बाहर ले जाये, कभी अकेला ना छोड़े। सभी कुछ तो बताया। और ज़्यादा से ज़्यादा वख़्त हिमांशु को नसीम के हाथ में देती जिससे हिमांशु को उसके हाथों की आदत हो जाये। पहले ही दिन से नसीम को अपने साड़ी और ब्लाउज पहनने को दिये जिससे बेजुबान हिमांशु माँ की खुशबू नसीम में पाये और माँ को मिस न करे। सरला सोचती थी इतनी नन्हीं सी जान को भी हम दग़ा देने से बाज़ नहीं आते। अपना दूध भी सुबह, शाम और रात को ही पिलाती। दिन में अक्सर अपने हाथों से ही दूध निकालकर अपनी उफनती छातियों को हल्का करती, वही दूध फ्रिज में रखती और बोतल से पिलवाती थी।

पहले दिन जब सरला हिमांशु को नसीम के हाथों में छोड़कर प्रकाश के साथ आफिस जा रही थी तो कार में बैठी रूआँसी बार–बार बता रही थी दूध कहाँ रखा है, बोतल अच्छे से धोना, गर्म पानी में नहलाना, केला पीसकर खिलाना, टट्टी–पेशाब वख़्त से करवाना वगैरह–वगैरह। यह सब सरला बता ही रही थी कि प्रकाश ने कहा बस भी करो। कितनी बार एक ही बात बताओगी नसीम को। वो खुद काफ़ी समझदार है।

''चुप करो। अगर तुम्हारा रूमाल और टाई कुर्सी पर न मिले तो आज भी कितना गुस्सा करते हो। नाश्ता छोड़कर उठ जाते हो। गुस्सा करना तो दूर हिमांशु तो कुछ कह भी नहीं सकता। उसके रोने की आवाज़ मेरे ऑफिस तक तो नहीं आ सकती?'' और सरला ने एक बार फिर वही सब कुछ दोहराना शुरू कर दिया। अपनी बात पूरी कर भी न पायी थी कि प्रकाश ने कार स्टार्ट कर दी और हमेशा की तरह तेज़ रफ़्तार से कनॉट प्लेस की तरफ़ भगानी शुरू कर दी। सरला रास्ते भर सोचती रही कि

प्रकाश तो उसको हमेशा एक कार ही समझता रहा। अपने आप स्टार्ट करता, एक्सलेरेटर दबाता, रफ़्तार तेज़ करता, स्टीयरिंग किसी भी डायरेक्शन में घुमाता और चन्द मिनटों में झटके से रोक देता रहा। अपनी तेज़ रफ़्तार से खुद ही अपनी मंजिल पर पहुँचता रहा। उसकी मंज़िल के बारे में पूछना तो दूर शायद सोचा भी नहीं प्रकाश ने!! यही सोचते–सोचते सरला ने अपनी भरी हुई छातियों पर हाथ फेरा और दोनों हाथों से अपनी चोली ढीली की। फिर ख्याल आया कि वो तो कार में बैठी है। हिमांशु तो घर में बोतल से उसका दूध पी रहा होगा। शाम को घर आते ही पहले हिमांशु को अपनी छाती से चिपटाती और सूँघने लगती उसके कपड़ों में अपनी खुशबू। सारा दिन उसको ऑफिस में और रास्ते भर यही ख्याल आता रहता कहीं नसीम हिमांशु को अपनी छाती से तो नहीं चिपका रही होगी? इसी तरह एक महीना बीत गया। हिमांशु अब तो खुद नसीम से चिपट जाता था, उससे बहुत हिलमिल गया था। सरला हालाँकि तसल्ली से अपना काम कर पाती थी पर अन्दर ही अन्दर उसको हिमांशु का नसीम से चिपटना अच्छा नहीं लगता। हर रोज़ सुबह ऑफिस जाते हुए वो अक्सर अपनी छातियों पर हाथ फेरा करती और बाद में हिमांशु के सिर पर जैसे उसको अपने दूध की कसम दे रही हो ''नसीम से ज़्यादा मत चिपटना।''

हिमांशु डेढ़ साल का हुआ कि फिर वही सिलसिला शुरू होने का डर सरला को लगने लगा। क्या एबोर्शन, सेलाइन और विटामिन्स का सिलसिला फिर शुरू करना होगा? डॉ. सेन के पास गयी। उन्होंने कहा–''सरला, आजकल हमारे यहाँ एक नये कान्ट्रासेपटिव के ट्रायल्स चल रहे हैं। वन्स इन ए इयर इन्जेक्शन के। वाइनॉट ज्वाइन दिस? सरला खुशी से तैयार हो गयी सारे फार्मस भर दिये। इन्जेक्शन भी लगवा लिया। सरला साइन्स के अडवान्समेंट में अपने कान्ट्रीब्यूशन से बहुत खुश हो रही थी। किस्मत की मार छः महीने ही निकले थे कि सरला प्रेगनेन्ट हो गयीं यह भी माफिक नहीं आया!!! अब क्या होगा, मेरे भगवान? भागकर आई डॉ. सेन के पास... डॉ. सेन ने कहा–''सरला यू आर सिम्पली ए यूनिक केस। तुम्हारी माँ बनने की इतनी डोमिनन्ट डिज़ायर है कि साइन्स की लेटस्ट डिस्कवरी भी हार मान गयी। सच मेडिसन आज भी इस इन्सान की फिज़ाओलिजी और एनाटमी को पूरी तरह से सौ फ़ीसदी नहीं समझ पायी।''

''हाँ, डॉक्टर सेन, मैं अब अपनी साइकोलिज़ी, अपनी भावनाएँ, अपने शरीर को समझ गयी हूँ। मैं हमेशा मदरहुड की नेचुरल फ़ीलिंग से भरी रहती हूँ और माँ तो क्रियेटर ही हो सकती है। अच्छा हुआ मैं कौरवों के युग में नहीं रह रही हूँ। वैसे भी देखिये न एक मैं हूँ जो हमेशा माँ बन जाती हूँ और बहुत ऐसी हैं जो चाहकर भी माँ नहीं बन पातीं। वाट ऐ डेस्टिनी? डॉक्टर एक बात बताइये सारी साइन्स हम औरतों पर ही क्यों आजमाई जातीं हैं। हमीं क्यों गिनीपिग्स बनाई जाती है। वाई नॉट मेल्स फार रिसर्च आन मेल्स।'' ''क्योंकि फीमेल इज़ ऐ क्रियेटर और मेल सिर्फ़ जेनेरेटर है। क्रियेटर आफरस एक्साईटिंग रिसर्च। आज तक की रिप्रोडक्टिव बायोलोजिकल रिसर्च में फीमेल्स का ही ज़्यादा कान्ट्रीब्यूशन रहा है। इटस ए चैलेंजिंग एरिया ऑफ रिसर्च, यू नो। सरला, प्रकाश को ही समझाओ। यह एबोर्शन मैं नहीं करुंगा। वैसे भी हिमांशु अब तीन साल का होने जा रहा है।''

''मैं भी नहीं करवाना चाहती एबोर्शन, डॉक्टर।''

सरला सीधी घर आयी। आकर अपने बेड पर लेट गयी। अचानक उसका बाँया हाथ अपनी दाहिनी छाती पर और दाहिना हाथ अपने माथे पर आ गये। उसकी आँखें मुँदने लगीं। फिर नज़र आयाः वही क्लीनिक, लेबर रूम, वैसा ही दाँतों का भींचना, वो ही चिल्लाना, वही आवाज़ कानों मेंः ज़रा सा प्रैशर और डालो, शाबाश, गुड गर्ल, बस थोड़ा सा प्रैशर और, फिर...एक तसल्ली भरी लम्बी साँस, एक नये इन्सान के रोने की आवाज़ के बीच कई आवाज़ें दूर जाती हुईं... नज़र आया सफेद चादर वाला बिस्तर, लाल कम्बल के नीचे उसकी बाँयी छाती से सटा बेजुबान हाथ भर का इन्सान। नज़र आयीं वहीं करवटें, वही आठ पौंड को छाती से चिपकाना, थोड़ी–थोड़ी देर में छातियाँ बदलना। नज़र आया उसके सिरहाने हिमांशु, नये इन्सान के ऊपर झुका हुआ कुछ बतियाता हुआ। बहुत कोशिश के बाद सरला ने पहचाना कि उसके पैताने टेड़ा,मेढ़ा, भौंडा और बदसूरत चेहरा तो उसके अपने प्यारे प्रकाश का ही था। पसीने से तरबतर सरला ने चिल्लाकर कहा–''नहीं, यह एबोर्शन नहीं होगा।'' नसीम भागती हुई आयी। हिमांशु भी अपने छोटे–छोटे डग भरता हुआ आया। कूदकर बेड पर चढ़ गया और लटक गया मम्मी के गले से कहा, ''त्या हो दया आप तो नो नहीं एं।'' सरला ने उसको अपनी छाती से कसकर चिपकाया और कहा, ''मेरे बच्चे, मेरे बच्चे। नहीं, अब यह नहीं करूँगी।'' हिमांशु को कब तक ऐसे ही अपने सीने से चिपकाये रही, पता नहीं। प्रकाश के घर में घुसते ही हिमांशु को अलग कर सरला जा लटकी प्रकाश के कन्धों से। बार–बार यही कर रही थी, ''ये एबोर्शन नहीं करवाऊँगी।''

प्रकाश सरला को बैड–रूम में ले गया। देर तक उसकी छातियों के बीच मुँह छिपाये रोता रहा। हिमांशु भी मम्मी डैडी को रोता देखकर रोने लगा। तब सरला और प्रकाश ने अपने आपको संभाला।

रात में प्रकाश ने सरला को समझाने की कोशिश की पर सरला ने साफ़–साफ़ कह दिया प्रकाश बहुत हो गया। मैं भी नेचुरल फ़ील करना चाहती हूँ। माँ बनना मेरा हक है। यह हिमांशु के पैदा होने के बाद समझ में आया। मेरा वजूद मेरे मदर हुड में है। मेरे फ़ीमेल बींग रहने में नहीं है, समझे...।

तुम हमेशा... मुझे बराबर का इन्सान समझने से इन्कार करते आये हो। तुम्हारी खुदगर्ज़ी और शोविनिज़्म की कोई हद ही नहीं रह गयी है। तुम अपने 280 सेकेण्डस की नेचुरल फ़ीलिंग हर रात, मैं चाहूँ न चाहूँ, एन्जोय करके सो जाते हो। तुम्हें याद है हमारे क्राइसिस मैनेजमेन्ट के ट्यूटर ने कहा था कि 'दी ह्यूमन वे रिमेन्स दी बेस्ट एण्ड नेचुरल वे ऑफ क्राइसिस मैंनेजमेन्ट इवन टुडे।' मैंने तय कर लिया है कि मैं 280 दिन और 280 रात अपनी इस नेचुरल फ़ीलिंग को फुल्ली फ़ील करूँगी।''

लेखक के कहानी संग्रह 'नसीबन' से साभार

पृष्ठ 6 का शेष.....

सकती फिर भी भाजपा ने पार्लियामेंट को काम नहीं करने दिया। प्रेस और मीडिया ने भाजपा के इस आंदोलन को खूब जगह दी और यह बात साबित करने की कोशिश की कि भाजपा का ये आंदोलन संवैधानिक और लोकतांत्रिक है। भाजपा अगर लोकतंत्र और संविधान में विश्वास रखने वाली पार्टी होती तो वो विश्वास मत का इंतज़ार करती और सोरेन को विधानसभा में हराती पर उसने ऐसा नहीं किया। राष्ट्रपति ने राज्यपाल को बुलाकर अपने संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन किया और उनका राज्यपाल को आदेश देना भी राज्यपाल के अधिकारों पर हमला है।

मीडिया और प्रेस की भूमिका – लोकसभा चुनावों से पहले मीडिया और प्रेस ने, ये जानते हुये कि भारतीय लोकतंत्र राजनीतिक पार्टियों, विचारधाराओं और मतदान पर आधारित है, सर्वेक्षण किये थे जिनमें बताया गया था कि भारत की जनता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री देखना चाहती है। इसी तरह इस बार भी **दी हिंदू** (अंग्रेजी) दैनिक ने **सेंटर फॉर दी स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसायटीज़** के साथ मिलकर एक सर्वेक्षण में बताया कि हरियाणा में जनता भजनलाल और झारखंड में शिबू सोरेन को मुख्यमंत्री के रूप में चाहती है। हालांकि सर्वेक्षणकर्ता जानते हैं कि विधायक खुद मुख्यमंत्री चुनते हैं!

इस तरह से देखा जाये तो फरवरी के विधानसभा चुनावों में लोकतंत्र के हर खम्भे की अपनी–अपनी विचारधारा से प्रेरित प्रतिबद्धता साफ तौर पर देखने को मिली। प्रेस और मीडिया ने एक बार फिर पार्टीगत राजनीति पर आधारित लोकतंत्र को एक तरफ रखकर व्यक्ति केंद्रित राजनीति और नेतृत्व पर ज़ोर दिया। चुनाव आयुक्त के फैसले, सुप्रीम कोर्ट के आदेश, राष्ट्रपति का भाजपा के विधायकों के प्रतिनिधिमंडल को मिलना और उनका बिहार के राज्यपाल को निर्देश, सभी के अपने–अपने संवैधानिक अधिकारों और जिम्मेदारियों का उल्लंघन हैं और अपरोक्ष रूप से भाजपा की विचारधारा का समर्थन है। यह एक गहरी चिन्ता का विषय है। ऐसे वक्त में जब लोकतंत्र और संविधान की रक्षा करने वाले जानबूझकर अपने संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन कर रहे हैं, सभी लोकतांत्रिक वामपंथी, धर्मनिरपेक्ष और संविधान में विश्वास करने वाली ताकतों और गैर सरकारी संगठनों को लोकतांत्रिक प्रणाली और धर्मनिरपेक्षता को मजबूत बनाने की दिशा में एक देशव्यापी आंदोलन खड़ा करने के बारे में सोचना होगा।

isd **इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**
फ्लैट नम्बर–110, नम्बरदार हाउस, 62–ए, लक्ष्मी मार्केट,
मुनिरका, नई दिल्ली–110067
टेलीफोन : 081–11–26177904, टेलीफैक्स : 091–11–26177904
ईमेल : <notowar@rediffmail.com>